द्वितीय श्रुतस्कन्ध : सुखविपाक सूत्र

प्रथम अध्ययन

1- **तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था। रिद्धित्थिमियसमिद्धे गुणसिलए चेइए। सुहम्मे अणगारे समोसढे। जम्बू जाव पज्जुवासइ एवं वयासी- जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं दुहविवागाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, सुहविवागाणं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबु अणगारं एवं वयासी- 'एवं खलु जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा**

गाथा- सुबाहू भद्दणंदी य सुजाए, सुवासवे तहेव जिणदासे
धणवई य महब्बले, भद्दणंदी महचंदे वरदत्ते॥

अर्थ- उस काल तथा उस समय में राजगृह नगर था। वह ऋद्धि और वैभव से समृद्ध था। उसके अन्तर्गत गुणशील नामक चैत्य-उद्यान में अनगार श्री सुधर्मा स्वामी पधारे। उनकी पर्युपासना-सेवा में संलग्न रहे हुए श्री जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया- प्रभो! यावत् मोक्ष रूप परम स्थिति को संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि दुःख-विपाक का यह (पूर्वोक्त) अर्थ प्रतिपादित किया, तो यावत् मुक्ति को संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

(विनयशील अन्तेवासी) आर्य जम्बू की इस जिज्ञासा के उत्तर में अनगार श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू अनगार के प्रति इस प्रकार बोले- जम्बू! यावत् निर्वाण प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सुख-विपाक के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं। वे इस प्रकार हैं-

(1) सुबाहु (2) भद्रनंदी (3) सुजात (4) सुवासव (5) जिनदास (6) धनपति (7) महाबल (8) भद्रनंदी (9) महचंद्र और (10) वरदत्त।

2-**'जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स सुहविवागाणं समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? तए णं से सुहम्मे अणगारे जंबु अणगारं एवं वयासी-**

अर्थ- भगवन! यावत् मोक्ष संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने यदि सुखविपाक के सुबाहुकुमार आदि दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं तो भगवन! मोक्ष को उपलब्ध श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुख-विपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है?

इस प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी ने श्री जम्बू अनगार के प्रति इस प्रकार कहा-

3- **एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे णामं णयरे होत्था- रिद्धित्थमियसमिद्धे। तत्थ णं हत्थिसीसस्स णयरस्स बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं पुप्फ-करंडए णामं उज्जाणे होत्था, सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धेरम्मे णंदणवणप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरुवे पडिरुवे। तत्थ णं कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था, दिव्वे।**

तत्थ णं हत्थिसीसे णयरे अदीणसत्तू णामं राया होत्था, महया हिमवंते-रायवण्णओ। तस्स णं अदीणसत्तुस्स रण्णो धारिणीपामोक्खं देवीसहस्सं ओरोहे यावि होत्था।

अर्थ- इस प्रकार निश्चय ही जम्बू! उस काल तथा उस समय में हस्तिशीर्ष नाम का एक बड़ा ऋद्ध-भवनादि के आधिक्य से युक्त, स्तिमित-स्वचक्र-परचक्र के भय से मुक्त, समृद्ध-धन-धान्यादि से परिपूर्ण नगर था। उस नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में अर्थात् ईशान कोण में सब ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फल-पुष्पादि से युक्त पुष्पकरण्डक नाम का एक (रमणीय) उद्यान था। उस उद्यान में कृतवनमाल-प्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था जो दिव्य, प्रधान एवं सुंदर था।

उस हस्तिशीर्ष नगर में अदीनशत्रु नामक राजा राज्य करता था, जो कि राजाओं में हिमालय आदि पर्वतों के समान महान् था। उस अदीनशत्रु नरेश के अन्त:पुर में धारिणीप्रमुख अर्थात् धारिणी जिनमें प्रधान है, ऐसी एक हजार रानियाँ थीं।

सुबाहु का जन्म : गृहस्थ जीवन

4- **तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि वासभवणंसि सीहं सुमिणे जहा मेह जम्मणं तहा भाणियव्वं; णवरं सुबाहुकुमारे जाव अलंभोगसमत्थे यावि जाणंति, जाणित्ता अम्मापियरो**

पंच पासायवडिंसगसयाइं करेंति अब्भुग्गयमूसियपहसियविवभवणं। एवं जहा महाबलस्स रण्णो। णवरं पुप्फचूला पामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकण्णा सयाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेइ। तहेव पंचसयाइं दाओ, जाव उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाण मत्थेहिं जाव विहरइ।

अर्थ- तदनन्तर एक समय राजकुल उचित वासभवन में शयन करती हुई धारिणी देवी ने स्वप्न में सिंह को देखा। जैसे ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र में वर्णित मेघकुमार का जन्म कहा गया है, उसी प्रकार पुत्र सुबाहु के जन्म आदि का वर्णन भी जान लेना चाहिए। यावत् सुबाहुकुमार सांसारिक कामभोगों का उपभोग करने में समर्थ हो गया। तब सुबाहुकुमार के माता-पिता ने उसे बहत्तर कलाओं में कुशल तथा भोग भोगने में समर्थ हुआ जाना, और जानकर उसके माता-पिता ने जिस प्रकार भूषणों में मुकुट सर्वोत्तम होता है, उसी प्रकार महलों में उत्तम ऐसे पाँच सौ महलों का निर्माण करवाया, जो अत्यन्त ऊंचे, भव्य एवं सुंदर थे। उन प्रासादों के मध्य में एक विशाल भवन तैयार करवाया, इत्यादि सारा वर्णन महाबल राजा की तरह जान लेना चाहिए। सुबाहुकुमार के विवाह में विशेषता यह है कि - पुष्पचूला प्रमुख पाँच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका विवाह कर दिया गया। इसी तरह पाँच सौ का प्रीतिदान-दहेज उसे दिया गया। तदनन्तर सुबाहुकुमार सुंदर प्रासादों में स्थित, जिसमें मृदंग बजाये जा रहे हैं, ऐसे नाट्यादि से उद्गीयमान होता हुआ मानवोचित मनोज्ञ विषयभोगों का यथारुचि उपभोग करने लगा।

सुबाहु का धर्म-श्रवण

5- **तेणं कालेणं तेणं समएणं, समणे भगवं महावीरे समोसढे। परिसा णिग्गया। अदीणसत्तू जहा कोणिए णिग्गए। सुबाहूकुमारे वि जहा जमाली तहा रहेण णिग्गए, जाव धम्मो कहिओ। राया परिसा य पडिगया।**

अर्थ- उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हस्तिशीर्ष नगर में पधारे। परिषद् (जनता) धर्मदेशना सुनने के लिए नगर से निकली। जैसे महाराजा कोणिक निकला था, अदीनशत्रु राजा भी उसी तरह भगवद् दर्शन तथा देशना श्रवण करने के लिए निकला। जमालिकुमार की तरह सुबाहुकुमार ने भी भगवान् के दर्शनार्थ रथ से प्रस्थान किया। यावत् भगवान् ने धर्म का स्वरूप प्रतिपादित किया। परिषद् और राजा धर्मदेशना सुनकर वापस लौट गए।

गृहस्थधर्म स्वीकार

6- **तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, वंदित्ता णमंसइ, णमंसित्ता एवं वयासी-'सद्दहामि णं भंत्ते! णिग्गंथं पावयणं जाव जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर सत्थवाहप्पभइओ मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया। णो खलु अहं तहा संचाएमि मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वयाइं सत्तसिक्खावयाइं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि।'**

''अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।''

अर्थ- तदनन्तर सुबाहु कुमार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट धर्मकथा श्रवण तथा मनन करके अत्यन्त प्रसन्न हुए, उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन, नमस्कार करने के अनन्तर कहने लगे- 'भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ यावत् जिस तरह आपके श्री चरणों में अनेक राजा, राज्याधिकारी यावत् सार्थवाह आदि उपस्थित होकर, मुंडित होकर तथा गृहस्थावस्था से निकलकर अनगारधर्म में दीक्षित हुए हैं, अर्थात् राजा, राज्याधिकारी आदि ने पंच महाव्रतों को स्वीकार किया है, वैसे मैं मुंडित होकर घर त्यागकर अनगार अवस्था को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। मैं पांच अणुव्रतों तथा सात शिक्षाव्रतों का जिसमें विधान है, ऐसे बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ।

उत्तर में भगवान् ने कहा- ''जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु इसमें देर मत करो।''

7. **तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वयाइं सत्तसिक्खावयाइं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव रहं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।**

अर्थ- ऐसा कहने पर सुबाहुकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समक्ष पांच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों वाले बारह प्रकार के गृहस्थधर्म को स्वीकार किया अर्थात् उक्त द्वादशविध व्रतों के यथाविधि पालन करने का नियम ग्रहण किया। तदनन्तर उसी रथ पर सुबाहुकुमार सवार हुए और सवार

होकर जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में वापस चले गये।

गौतम की सुबाहु विषयक जिज्ञासा

8- **तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इन्दभूई णामं अणगारे जाव एवं वयासी-''अहो णं भंते! सुबाहुकुमारे १. इट्ठे, इट्ठरूवे, २. कंते, कंतरूवे, ३. पिये, पियरूवे, ४. मणुण्णे, मणुण्णरूवे, ५. मणामे, मणामरूवे, सोमे, सुभगे, पियदंसणे सुरूवे। बहुजणस्स वि य णं भंते! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरुवे ५. सोमे जाव सुरूवे। साहुजणस्स वि य णं भंते! सुबाहुकुमारे इट्ठे इट्ठरूवे जाव सुरूवे। सुबाहुणा भंते! कुमारेणं इमा एयारूवा उराला माणुस्सरिद्धि किण्णा लद्धा? किण्णा पत्ता? किण्णा अभिसमण्णागया? को वा एस आसी'' जाव किं णामए वा किं गोतए वा किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा जेणं इमेयारूवा उराला माणुस्सरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया?**

उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति गौतम अनगार यावत् इस प्रकार कहने लगे- 'भगवन्! सुबाहुकुमार (बहुजन इष्ट) बड़ा ही इष्ट, इष्टरूप, कान्त, कान्तरूप, प्रिय, प्रियरूप, मनोज्ञ, मनोज्ञरूप, मनाम, मनामरूप, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन और सुरूप-सुन्दर रूप वाला है। भगवन्! यह सुबाहुकुमार साधुजनों को भी इष्ट, इष्ट रूप यावत् सुरूप लगता है।

भगवन्! सुबाहुकुमार ने यह अपूर्व मानवीय समृद्धि कैसे उपलब्ध की? कैसे प्राप्त की? और कैसे उसके सन्मुख उपस्थित हुई? सुबाहुकुमार पूर्वभव में कौन था? यावत् इसका नाम और गोत्र क्या था? किस ग्राम अथवा बस्ती में उत्पन्न हुआ था? क्या दान देकर, क्या उपभोग कर और कैसे आचार का पालन करके और किस श्रमण या माहन के एक भी आर्यवचन को श्रवण कर सुबाहुकुमार ने ऐसी यह ऋद्धि एवं लब्धि प्राप्त की है, कैसे यह समृद्धि इसके सन्मुख उपस्थित हुई है?

विवेचन- सुबाहुकुमार की व्यावहारिक जीवन जीने की कला इतनी अद्भुत और आकर्षक थी कि वह आम जनसमुदाय का प्रीति-भाजन बन गया। उससे सभी प्रसन्न थे। प्राणों के अन्तराल से उसे चाहते थे। जन-मन

के हृदय में देवता की तरह उसने स्थान बना लिया था। इतना ही नहीं, वह साधुजनों का भी स्नेहपात्र बन गया था। आध्यात्मिक साधना की दिशा में प्रतिपल जागृत व प्रगतिशील रहने के कारण निःस्वार्थ, स्वभावतः अनासक्त एवं निष्काम वृत्ति वाले साधुपुरुषों के हृदय में भी सुबाहु का प्रेम-पूर्ण स्थान बन गया। सुबाहुकुमार के लिये ये जो अनेक विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं, वे सामान्य दृष्टि से समानार्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु उन सबके अर्थ में थोड़ा अन्तर है, जो इस प्रकार है-

इष्ट- जो चाहने योग्य हो, जिसकी इच्छा की जाय, वह इष्ट होता है।

इष्टरूप- किसी की चाह उसके विशेष कृत्य को उपलक्षित करके भी सम्भव है, अतः इष्टरूप अर्थात् उसकी आकृति ही ऐसी थी जिससे इष्ट प्रतीत होता था।

कान्त- इष्टरूपता भी अन्यान्य कारणों से संभवित है, अतः स्वरूपतः कान्त-रमणीय था।

कान्तरूप- सुंदर स्वभाव वाला। (सुबाहु की इष्टता में उसका सुंदर स्वभाव कारण था।)

प्रिय- सुंदर स्वभाव होने पर भी कर्म के प्रभाव से प्रेम उत्पन्न करने में असमर्थ रह सकता है, अतः प्रेम का उत्पादक जो हो, वह प्रिय।

प्रियरूप- जिसका रूप प्रिय- प्रीतिजनक हो।

मनोज्ञ-मनोज्ञरूप- आन्तरिक वृत्ति से जिसकी शोभनता अनुभव में आए वह मनोज्ञ, उसके रूप वाला मनोज्ञरूप कहलाता है।

मनाम, मनामरूप- किसी की मनोज्ञता तात्कालिक भी हो सकती है, अतः मनाम विशेषण से जिसकी सुंदरता का स्मरण बार-बार किया जाए।

सोम- रुद्रतारहित व्यक्ति सोम-सौम्य स्वभाव वाला होता है।

सुभग- वल्लभता वाला।

सुरूप- सुन्दर आकार तथा स्वभाव वाले को सुरूप कहते हैं।

प्रियदर्शन- प्रेम का जनक आकार और उस आकार वाला।

भगवान् द्वारा समाधान

9- **एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे हत्थिणाउरे णामं णयरे होत्था, रिद्धत्थमियसमिद्धे। तत्थ णं हत्थिणाउरे णयरे सुमुहे णामं गाहावई परिवसइ। अड्ढे दित्ते जाव अपरिभूए।**

गौतम! उस काल तथा उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारत-वर्ष में हस्तिनापुर नाम का एक ऋद्ध, स्तमित एवं समृद्ध नगर था। वहां सुमुख नाम का धनाढ्य गाथापति रहता था। वह दीप्तिमन्त यावत् लोगों द्वारा अपराभूत यानि रुवाबदार व्यक्तित्व होने के कारण किसी से हटाया नहीं जा सकता था।

10- **तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसे णामं थेरे जाइसंपण्णे जाव पंचहिं समणसएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिणाउरे णयरे, जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिणहइ उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।**

उस काल तथा उस समय उत्तम जाति और कुल से संपन्न अर्थात् श्रेष्ठ मातृपक्ष एवं पितृपक्ष वाले यावत् पाँच सौ श्रमणों से परिवृत हुए धर्मघोष नामक स्थविर (जाति, श्रुत व पर्याय से वृद्ध) क्रमपूर्वक चलते हुए तथा ग्रामानुग्राम विचरते हुए हस्तिनापुर नगर के सहस्राम्रवन नामक उद्यान में पधारे। पधारकर वहां यथा प्रतिरूप- अनगार धर्म के अनुकूल अवग्रह (आश्रय स्थान) को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

विवेचन- स्थविर शब्द का सामान्य अर्थ वृद्ध या बड़ा साधु होता है। स्थानांग में तीन प्रकार के स्थविर बताये हैं- 1. जातिस्थविर 2. श्रुतस्थविर 3. पर्यायस्थविर। साठ वर्ष की अवस्था वाला मुनि जातिस्थविर कहलाता है। स्थानांग व समवायांग का पाठी श्रुतस्थविर गिना जाता है। कम से कम बीस वर्ष की दीक्षापर्याय वाला पर्यायस्थविर माना जाता है। (स्थानांगसूत्र, स्थान 3 उ; 3) ज्ञातासूत्र आदि में गणधरों को भी स्थविर पद से सम्बोधित किया है।

11- **तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी सुदत्ते णामं अणगारे उराले जाव तेउलेसे मासं मासेणं खममाणे विहरइ। तए णं से सुदत्ते अणगारे मासखमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ,**

जहा गोयमसामी तहेव, धम्मघोसे थेरे आपुच्छइ, जाव अडमाणे सुमुहस्स गाहावइस्स गिहं अणुप्पविट्ठे।

उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर के अन्तेवासी- शिष्य उदार-प्रधान यावत् तेजोलेश्या को संक्षिप्त किए हुए (अनेक योजन प्रमाण वाले क्षेत्र में स्थित वस्तुओं को भस्म कर देने वाली तेजोलेश्या- घोर तप से प्राप्त होने वाली लब्धि-विशेष को अपने में संक्षिप्त-गुप्त किए हुए) सुदत्त नाम के अनगार मासक्षमण का तप करते हुए अर्थात् एक-एक मास के उपवास के बाद पारणा करते हुए विचरण कर रहे थे। एक बार सुदत्त अनगार मास-क्षमण पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, दूसरे प्रहर में ध्यान करते हैं और तीसरे प्रहर में श्री गौतम स्वामी जैसे श्रमण भगवान् महावीर से भिक्षार्थ गमन के लिए पूछते हैं, वैसे ही वे धर्मघोष स्थविर से पूछते हैं, यावत् भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए सुमुख गाथापति के घर में प्रवेश करते हैं।

12- **तए णं से सुमुहे गाहावई सुदत्तं अणगारं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता सुदत्तं अणगारं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुतो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयहत्थेणं विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं पडिलाभिस्सामि त्ति कट्टु तुट्ठे पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिए वि तुट्ठे!**

तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सुदत्त अनगार को आते हुए देखता है और देखकर अत्यन्त हर्षित और प्रसन्न होकर आसन से उठता है। आसन से उठकर पाद-पीठ-पैर रखने के आसन से नीचे उतरता है। उतरकर पादुकाओं को छोड़ता है। छोड़कर एक शाटिक-एक कपड़ा जो बीच में सिला हुआ न हो, इस प्रकार का उत्तरासंग (उत्तरीय वस्त्र) शरीर पर धारण करता है, उत्तरासंग धारण करने के अनन्तर सुदत्त अनगार के सत्कार के लिए सात-आठ कदम सामने जाता है। सामने जाकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करता है, वंदन, नमस्कार करता है। वंदना, नमस्कार करके जहाँ अपना भक्तगृह-भोजनालय था, वहाँ आता है। आकर अपने हाथ से विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार दान का लाभ प्राप्त करूंगा, इस विचार

से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होता है। वह आहार देते समय भी प्रसन्न होता है और आहार दान के पश्चात् भी प्रसन्नता का अनुभव करता है।

13- **तए णं तस्स सुमुहस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं[1] दायगसुद्धेणं पडिग्गाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं सुदत्ते अणगारे पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए, मणुस्साउए णिबद्धे! गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं[2] पाउब्भूयाइं, तंजहा-**

1. **वसुहारा वुट्ठा**
2. **दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए**
3. **चेलुक्खेवे कए**
4. **आहयाओ देवदुन्दुहिओ**
5. **अंतरा वि य णं आगासंसि 'अहो दाणं अहो दाणं' घुट्टे य।**

तए णं हत्थिणाउरेणयरे सिंघाडग जाव पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ- 'धण्णे णं देवाणुप्पिया! सुमुहे गाहावई जाव तं धण्णे णं देवाणुप्पिया सुमुहे गाहावई!'

तदनन्तर उस सुमुख गाथापति के शुद्ध द्रव्य (निर्दोष आहारदान) दाता एवं आदाता (ग्रहण करने वाले) की शुद्धि रूप से तथा त्रिविध, त्रिकरण शुद्धि से अर्थात् मन, वचन और काय की स्वाभाविक उदारता सरलता एवं निर्दोषता से सुदत्त अनगार के प्रतिलाभित होने पर अर्थात् सुदत्त अनगार को विशुद्ध भावना द्वारा शुद्ध आहार के दान से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए सुमुख गाथापति ने

नोट - 1. **दव्वसुद्धेणं गाहगसुद्धेणं दायगसुद्धेणं**=द्रव्य शुद्धि, ग्राहक शुद्धि और दाता की शुद्धि इस प्रकार है- देयशुद्धि- सुमुख गाथापति द्वारा निर्दोष आहार देना, दातृ-शुद्धि-दान से पहिले, दान देते समय और दान देने के पश्चात् सुमुख के चित्त में आनन्द का अनुभव होना, हर्षित मन वाला होना। आदाता-ग्राहक मास-क्षमण-तपोधनी सुदत्त मुनि। इस प्रकार देय दाता व आदाता की पवित्रता से दान उत्तम फल-दायी होता है।

2. **दिव्वाइं**=(1) देवता सम्बन्धी वसु-सुवर्ण और उसकी लगातार वृष्टि धारा कहलाती है। देवकृत सुवर्ण- वृष्टि को ही वसुधारा कहते हैं। (2) कृष्ण, नील, पीत, श्वेत और रक्त पांच रंग पुष्पों में पाए जाते हैं। देवों द्वारा बरसाए गए ये पुष्प वैक्रिय-लब्धिजन्य हैं, अतः अचित्त होते हैं। (3) **चेलोत्क्षेप**-चेल-वस्त्र, उसका उत्क्षेप-फेंकना चेलोत्क्षेप कहा जाता है। (4) **देवदुन्दुभिनाद**-देव-दुन्दुभियों का बजना। (5) आश्चर्य उत्पन्न करने वाले दान की **'अहो दान'** संज्ञा है। जिस दान के प्रभाव से आकर्षित हो देवता स्वयं ऐसा करते हों, उसे अहोदान शब्द से कहना युक्तिसंगत ही है।

संसार को (जन्म-मरण की परम्परा को) बहुत कम कर दिया और मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया। उसके घर में सुवर्णवृष्टि, पाँच वर्णों के फूलों की वर्षा, वस्त्रों का उत्क्षेप (फेंकना) देवदुन्दभियों का बजना तथा आकाश में 'अहोदान' इस दिव्य उद्घोषणा का होना- ये पाँच दिव्य प्रकट हुए।

हस्तिनापुर के त्रिपथ यावत् सामान्य मार्गों में अनेक मनुष्य एकत्रित होकर आपस में एक-दूसरे से कहते थे- देवानुप्रियो! धन्य है सुमुख गाथापति! सुमुख गाथापति सुलक्षण है, कृतार्थ है, उसने जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है जिससे इस प्रकार की यह मानवीय ऋद्धि प्राप्त हुई। वास्तव में धन्य है सुमुख गाथापति!

विवेचन-भावनाशील और सरलचेता दाता को दान देते हुए तीन बार हर्ष होता है- आज मैं दान दूंगा, आज मुझे सद्भाग्य से दान देने का स्वर्णावसर उपलब्ध हुआ है, यह प्रथम हर्ष! फिर दान देने के समय उसके रोंएँ-रोंएँ में आनन्द उभरता है, यह दूसरा हर्ष! और दान देने के पश्चात अन्तरात्मा में संतोष व आनन्द वृद्धिगत होता रहता है, यह तीसरा हर्ष।

दूसरी तरह देय, दाता व प्रतिग्राहक पात्र, ये तीनों ही शुद्ध हों तो वह दान जन्म-मरण के बन्धनों को तोड़ने वाला और संसार को परित्त-संक्षिप्त-कम करने वाला होता है।

14- **तए णं से सुमुहे गाहावई बहूइ वासाइं आउयं पालेइ, पालित्ता काल मासे कालं किच्चा इहेव हत्थिसीसे णयरे अदीणसत्तुस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णे। तए णं सा धारिणी देवी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी तहेव सीहं पासइ, सेसं तं चेव जाव उप्पिं पासाए विहरइ।**

तं एवं खलु, गोयमा! सुबाहुणा कुमारेणं इमे एयारूवा उराला माणुस्सरिद्धी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सैंकड़ों वर्षों की आयु का उपभोग कर काल-मास में काल करके इसी हस्तिशीर्षक नगर में अदीनशत्रु राजा की धारिणी देवी की कुक्षि में पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ (गर्भ में आया)। तत्पश्चात् वह धारिणी देवी किंचित सोई और किंचित जागती हुई स्वप्न में सिंह को देखती है। शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। यावत् उन्नत प्रासादों में मानव सम्बन्धी उदार भोगों का यथेष्ट उपभोग करता हुआ विचरता है।

भगवान् ने कहा- गौतम! सुबाहुकुमार को उपर्युक्त महादान के प्रभाव से इस तरह की मानव-समृद्धि उपलब्ध तथा प्राप्त हुई और उसके समक्ष समुपस्थित हुई है।

15- **''पभू णं भंते! सुबाहुकुमारे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?''**

'हंता पभू'!

तए णं से भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं से समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं हत्थिसीसाओ णयराओ पुप्फकरंडयाओ उज्जाणाओ कयवण मालप्पियस्स-जक्खस्स जक्खाययणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ।

तए णं से सुबाहुकुमारे समणोवासए जाए अभिगय जीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

गौतम- प्रभो! सुबाहुकुमार आपश्री के चरणों में मुण्डित होकर, गृहस्थावास को त्याग कर अनगार धर्म को ग्रहण करने में समर्थ है?

भगवान्- हाँ गौतम! है! अर्थात् प्रव्रजित होने में समर्थ है।

तदनन्तर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना व नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किसी अन्य समय हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरण्डक उद्यानगत कृतवनमाल नामक यक्षायतन से विहार किया और विहार करके अन्य देशों में विचरने लगे।

इधर सुबाहुकुमार श्रमणोपासक- देशविरत श्रावक हो गया। जीव अजीव आदि तत्वों का मर्मज्ञ यावत् आहारादि के दान-जन्य लाभ को प्राप्त करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

16- **तए णं से सुबाहुकुमारे अण्णया कयाइं चाउद्दसट्ठ मुद्दिट्ठ पुण्णमासिणीसु जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए अट्ठमभत्तिए पोसहं**

पडिजागरमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् किसी समय वहाँ सुबाहुकुमार चतुर्दशी, अष्टमी, उद्दिष्ट-अमावस्या और पूर्णमासी, इन तिथियों में जहाँ पौषधशाला थी- पौषधव्रत करने का स्थान विशेष था- वहाँ आता है। आकर पौषधशाला का प्रमार्जन करता है, प्रमार्जन कर उच्चारप्रस्रवणभूमि-मल-मूत्र विसर्जन के स्थान की प्रतिलेखना-निरीक्षण करता है। दर्भसंस्तार-कुशा (घास) के आसन को बिछाता है। बिछाकर दर्भ के आसन पर आरूढ़ होता है और अट्ठमभक्त-तीन दिन का लगातार उपवास ग्रहण करता है। पौषधशाला में पौषधिक -पौषधव्रत धारण किए हुए वह, अट्ठमभक्त सहित पौषध- अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में करने योग्य जैन श्रावक का व्रत विशेष अथवा आहारादि के त्यागपूर्वक किए जाने वाले धार्मिक अनुष्ठान विशेष का यथाविधि पालन करता हुआ अर्थात् तेला- के साथ पौषध करके विचरण करता है।

17- **तए णं तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेएयारुवे अज्झत्थिए समुप्पण्णे- धण्णा णं ते गामागर-णयर-जाव सण्णिवेसा जत्थ णं समणे भगवं महावीरे विहरइ।**

धण्णा णं ते राइसर-जाव सत्थवाहप्पभइओ जे णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं पडिसुणंति।

तं जइ णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छेज्जा जाव विहरेज्जा, तए णं अहं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता जाव पव्वएज्जा।

तदन्तर मध्य रात्रि में धर्मजागरण के कारण जागते हुए सुबाहुकुमार के मन में यह आन्तरिक विचार, चिन्तन, कल्पना, इच्छा एवं मनोगत संकल्प उठा कि- वे ग्राम, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट (खेड़े) कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पट्टन, आश्रम, संबाध और सन्निवेश धन्य हैं, जहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचरते हैं।

वे राजा, राज्याधिकारी, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह आदि भी धन्य हैं जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट मुण्डित होकर प्रव्रजित होते हैं।

वे राजा, राज्याधिकारी आदि धन्य हैं जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पञ्चाणुव्रतिक और सप्त शिक्षाव्रतिक (पाँच अणुव्रतों एवं सात

शिक्षाव्रतों का जिसमें विधान है) उस बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को अंगीकार करते हैं।

वे राजा ईश्वर आदि धन्य हैं जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म-श्रवण करते हैं।

अतः यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पूर्वानुपूर्वी- क्रमशः गमन करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते हुए, यहाँ पधारें तो मैं गृह त्यागकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास मुंडित होकर प्रव्रजित हो जाऊँ।

18- **तए णं समणे भगवं महावीरे सुबाहुस्स कुमारस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव हत्थिसीसे णयरे जेणेव पुप्फकरंडे उज्जाणे जेणेव कयवणमालपियस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।**

परिसा राया णिग्गया। तए णं तस्स सुबाहुस्स कुमारस्स तं महया जहा पढमं तहा णिग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा राया पडिगया।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सुबाहुकुमार के इस प्रकार के संकल्प को जानकर क्रमशः ग्रामानुग्राम विचरते हुए जहाँ हस्तिशीर्षनगर था, और जहाँ पुष्पकरण्डक नामक उद्यान था, और जहाँ कृतवनमालप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, वहाँ पधारे एवं यथा प्रतिरूप-अनगार वृत्ति के अनुकूल अवग्रह-स्थानविशेष को ग्रहण कर संयम व तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए अवस्थित हुए।

तदनन्तर परिषद् व राजा दर्शनार्थ निकले। सुबाहुकुमार भी पूर्व ही की तरह बड़े समारोह के साथ भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ। भगवान् ने उस परिषद् तथा सुबाहुकुमार को धर्म का प्रतिपादन किया। परिषद् और राजा धर्मदेशना सुनकर वापिस चले गये।

19- **तए णं से सुबाहुकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे. जहा मेहो तहा अम्मापियरो आपुच्छइ। णिक्खमणाभिसेओ तहेव जाव अणगारे जाए इरिया-समिए जाव गुत्तबंभयारी।**

तए णं से सुबाहू अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता

बहूहिं चउत्थ छट्ठट्ठम तवोविहाणेहिं अप्पाणं भावित्ता बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाइं छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

सुबाहुकुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास से धर्म श्रवण कर उसका मनन करता हुआ (ज्ञाताधर्मकथा में वर्णित) श्रेणिक राजा के पुत्र मेघकुमार की तरह अपने माता-पिता से अनुमति लेता है। तत्पश्चात् सुबाहुकुमार का निष्क्रमण-अभिषेक मेघकुमार ही की तरह होता है। यावत् वह अनगार हो जाता है, ईर्यासमिति का पालक यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन जाता है।

तदनन्तर सुबाहु अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरों के पास से सामायिक आदि एकादश अंगों का अध्ययन करते हैं। अनेक उपवास, बेला, तेला आदि नाना प्रकार के तपों के आचरण से आत्मा को वासित करके अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय (साधुवृत्ति) का पालन कर एक मास की संलेखना (एक अनुष्ठान-विशेष जिसमें शारीरिक व मानसिक तप द्वारा कषाय आदि का नाश किया जाता है) के द्वारा अपने आपको आराधित कर साठ भक्तों-भोजनों का अनशन द्वारा छेदन कर अर्थात् 30 दिन का अनशन कर आलोचना व प्रतिक्रमण पूर्वक समाधि को प्राप्त होकर कालमास में काल करके सौधर्म देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुए।

20- **से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिइ, लभिहित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, बुज्झिहित्ता तहारूवाणं थेराणं अंतिए मुंडे भविता जाव पव्वइस्सइ। से णं तत्थ बहूइं वासाइं सामण्ण परियागं पाउणिहिइ, पाउणिहित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सणंकुमारे कप्पे देवत्ताए उववण्णे।**

से णं ताओ देवलोगाओ माणुस्सं, जाव पव्वएज्जा। बंभलोए। तओ माणुस्सं महासुक्के। तओ माणुस्सं। आणए देवे। तओ माणुस्सं तओ आरणे। तओ माणुस्सं, तओ सव्वट्ठसिद्धे।

से णं तओ अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहेवासे जाव अड्ढे जहा दढपइण्णे, सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिणिव्वाहिइ सव्वखदुक्खाणमंतं करेहिइ।

20- तदनंतर वह सुबाहुकुमार का जीव सौधर्म देवलोक से आयु, भव और स्थिति के क्षय होने पर व्यवधान रहित होकर देव शरीर को छोड़कर सीधा मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा। प्राप्त करके शंकादि दोषों से रहित होकर केवली द्वारा बोधि का लाभ प्राप्त करेगा, बोधि उपलब्ध कर तथारूप स्थविरों के पास मुंडित होकर साधुधर्म में प्रव्रजित हो जाएगा। वह अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय- संयम व्रत का पालन करेगा और आलोचना तथा प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होगा। काल धर्म को प्राप्त कर सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ से पुनः मनुष्य भव प्राप्त करेगा। दीक्षित होकर यावत् ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से फिर मनुष्य भव में संयम ग्रहण करके महाशुक्र नामक देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यवकर फिर मनुष्यभव में जन्म लेगा और पूर्व की ही तरह दीक्षित होकर यावत् आनत नामक नवम देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ की भवस्थिति को पूर्ण कर मनुष्य भव में आकर दीक्षित हो आरण नाम के ग्यारहवें देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यवकर मनुष्य-भव को धारण करके अनगार-धर्म का आराधन कर आयु के क्षय होने पर सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में उत्पन्न होगा। वहाँ से च्यवकर सुबाहुकुमार का वह जीव व्यवधान रहित महाविदेह क्षेत्र में सम्पन्न कुलों में से किसी कुल में उत्पन्न होगा। वह दृढ़ प्रतिज्ञ की भाँति चारित्र प्राप्त कर सिद्ध पद को प्राप्त करेगा।

21- **एवं खलु जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। त्ति बेमि।**

॥ सुहविवागस्स पढमं अज्झयणं समत्तं॥

आर्य सुधर्मा स्वामी कहते हैं- जम्बू! यावत् मोक्षसंप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक अंग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है। जैसा मैंने अपने धर्मोपदेशक धर्माचार्य से सुना है, वैसा मैं कहता हूँ।

॥ सुखविपाक सूत्र का प्रथम अध्ययन समाप्त॥

-----●-----

द्वितीय अध्ययन

भद्रनन्दी

1-**बिईयस्स उक्खेवो।**

द्वितीय अध्ययन की प्रस्तावना पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए।

2- **एवं खलु जबू तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभपुरे णयरे। थूभकरंडग उज्जाणं। धण्णो जक्खो। धणवहो राया। सरस्सई देवी। सुमिणदंसणं, कहणं, जम्मं, बालत्तणं, कलाओ य। जोव्वणे पाणिग्गहणं दाओ पासाया य भोगा य।**

जहा सुबाहुस्स। णवरं भद्दणंदी कुमारे। सिरिदेवी पामोक्खाणं पंचसया णंकण्णगाणं, पाणिग्गहणं सामिस्स समोसरणं। सावगधम्मंपडिवज्जेइ पुव्वभवपुच्छा। महाविदेहे वासे पुंडरीकिणी णगरीए। विजए कुमारे। जुगबाहू तित्थयरे पडिलाभिए। मणुस्साउए णिबद्धे। इहं उववण्णे। सेसं जहा सुबाहुस्स जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ। एवं खलु जबूं। समेणणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं बिईयस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णते। त्ति बेमि।

॥ सुहविवागस्स बियं अज्झयणं समत्तं॥

जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया कि श्रमण भगवान् महावीर ने सुखविपाक के दूसरे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है? उत्तर में सुधर्मा स्वामी कहते हैं- जम्बू! उस काल तथा उस समय में ऋषभपुर नाम का एक नगर था। वहाँ स्तूप करण्डक नामक उद्यान था। धन्य नामक यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ धनावह नाम का राजा राज्य करता था। उसकी सरस्वती देवी नाम की रानी थी। महारानी का स्वप्न-दर्शन, पति से स्वप्न-वृत्तान्तकथन, समय आने पर बालक का जन्म, बालक का बाल्यावस्था में कलाएं सीखकर यौवन को प्राप्त होना, तदनन्तर विवाह होना, माता-पिता के द्वारा दहेज देना और ऊँचे प्रासादों में अभी भोगोपभोगों का उपभोग करना, आदि सभी वर्णन सुबाहुकुमार की ही तरह जानना चाहिए। उसमें अन्तर केवल इतना है कि सुबाहुकुमार के बदले बालक का नाम 'भद्रनन्दी' था। उसका श्रीदेवी प्रमुख पाँच सौ देवियों के साथ (श्रेष्ठ राज्यकन्याओं के साथ) विवाह हुआ। तदनन्तर महावीर स्वामी का पदार्पण

हुआ, भद्रनन्दी ने श्रावकधर्म अंगीकार किया। गौतम स्वामी द्वारा उसके पूर्वभव सम्बन्धी प्रश्न करने पर भगवान् ने इस प्रकार उत्तर दिया-

महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी नाम की नगरी में विजय कुमार था। उसके द्वारा भी युगबाहू तीर्थंकर को प्रतिलाभित करना- दान देना, उससे मनुष्य आयुष्य का बन्ध होना, यहाँ भद्रनन्दी के रूप में जन्म लेना, यह सब सुबाहुकुमार की ही तरह जान लेना चाहिए। यावत् वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, निर्वाण पद को प्राप्त करेगा व सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

॥ सुखविपाक सूत्र का द्वितीय अध्ययन समाप्त॥

-----●-----

तृतीय अध्ययन

सुजातकुमार

1- **तईयस्स उक्खेवो।**

तृतीय अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिए।

2- **वीरपुरेणामं णयरे। मणोरमे उज्जाणे। वीरकण्हे जक्खे मित्ते राया। सिरीदेवी। सुजाए कुमारे। बलसिरी पामोक्खाणं पंचसयकण्णा पाणिग्गहणं सामीसमोसरिए पुव्वभवपुच्छा। उसुयारे णयरे। उसभदत्ते गाहावई। पुप्फदंते अणगारे पडिलाभिए। माणुस्साउए णिबद्धे। इह उववण्णे जाव महाविदेह वासे सिज्झिहिइ। बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।**

॥ सुहविवागस्स तईयं अज्झयणं समत्तं॥

श्री सुधर्मा स्वामी ने कहा- जम्बू! वीरपुर नामक नगर था। वहाँ मनोरम नाम का उद्यान था। वीरकृष्ण का यक्षायतन था। महाराज मित्र राज्य करते थे। श्रीदेवी नामक उनकी रानी थी। सुजात नाम का कुमार था। बलश्री प्रमुख 500 श्रेष्ठ राज-कन्याओं के साथ सुजातकुमार का पाणिग्रहण-संस्कार हुआ। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। सुजातकुमार ने श्रावक-धर्म स्वीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने पूर्वभव की जिज्ञासा प्रकट की। श्रमण भगवान् महावीर ने इस तरह पूर्वभव का वृत्तान्त कहा-

इषुकार नामक नगर था। वहाँ ऋषभदत्त गाथापति रहता था। उसने पुष्पदत्त अनगार को निर्दोष आहार दान दिया, फलतः शुभ मनुष्य आयुष्य का बन्ध हुआ। आयु पूर्ण होने पर यह सुजातकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ यावत् महाविदेह क्षेत्र में चारित्र ग्रहण कर सिद्ध पद को प्राप्त करेगा।

विवेचन- दूसरे अध्ययन की तरह तीसरे अध्ययन का भी सारा वर्णन प्रथम अध्ययन के ही समान है। केवल नाम व स्थान मात्र का भेद है। अतः सारा वर्णन सुबाहुकुमार की ही तरह समझ लेना चाहिए।

॥ सुखविपाक सूत्र का तृतीय अध्ययन समाप्त॥

-----●-----

चतुर्थ अध्ययन

सुवासवकुमार

1- **चउत्थस्स उक्खेवो।**

चतुर्थ अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व समझ लेनी चाहिए।

2- **विजयपुरे णयरे। णन्दणवणे उज्जाणे। असोगो जक्खो। वासवदत्ते राया। कण्हसिरीदेवी। सुवासवे कुमारे। भद्दापामोक्खाणं पंचसया जाव पुव्वभवपुच्छा कोसंबी णयरी। धणपालो राया। वेसमणभद्द अणगारे पडिलाभिए। इहं उववण्णे। जाव सिद्धे।**

॥ सुहविवागस्स चउत्थं अज्झयणं समत्तं॥

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया- जम्बू! विजयपुर नाम का एक नगर था। वहाँ नन्दनवन नाम का उद्यान था। उस उद्यान में अशोक नामक यक्ष का एक यक्षायतन था। विजयपुर नगर के राजा का नाम वासवदत्त था। उसकी कृष्णश्रीदेवी नाम की रानी थी। सुवासवकुमार नामक राजकुमार था। भद्रा-प्रमुख पांच सौ राजाओं की श्रेष्ठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। सुवासवकुमार ने श्रावकधर्म स्वीकार किया। गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त पूछा। उत्तर में श्री भगवान् ने फरमाया-

गौतम! कौशाम्बी नाम की नगरी थी। वहाँ धनपाल नामक राजा था। उसने वैश्रमणभद्र अनगार को निर्दोष आहार का दान दिया, उसके प्रभाव से मनुष्य-आयुष्य का बन्ध हुआ, यावत् यहाँ सुवासवकुमार के रूप में जन्म

लिया है, यावत् इसी भव में सिद्ध-गति को प्राप्त हुए।

विवेचन- प्रस्तुत अध्ययन में भी चरित्रनायक के नाम, जन्मभूमि, उद्यान, माता-पिता, परिणीत स्त्रियों, पूर्वभव सम्बन्धी नाम, जन्मभूमि तथा प्रतिलाभित मुनिराज की विभिन्नता के नामों को छोड़कर अवशिष्ट सारा कथा- विभाग सुबाहुकुमार की ही तरह समझ लेने का निर्देश किया है।

।।सुखविपाक सूत्र का चतुर्थ अध्ययन समाप्त।।

-----●-----

पंचम अध्ययन

जिनदास

1- **पंचमस्स उक्खेवो।**

पंचम अध्ययन की प्रस्तावना भी यथापूर्व जान लेनी चाहिए।

2- **सोगन्धिया णयरी। णीलासोगे उज्जाणे। सुकालो जक्खो। अप्पडिहयराया। सुकण्हा देवी। महचंदे कुमारे। तस्स अरहदत्ता भारिया। जिणदासो पुत्तो। तित्थयरागमणं। जिणदासो पुव्वभव पुच्छा। मज्झमिया णयरी। मेहरहे राया। सुधम्मे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।**

।। सुहविवागस्स पंचमं अज्झयणं समत्तं।।

जम्बू! सौगन्धिका नाम की नगरी थी। वहाँ नीलाशोक नाम का उद्यान था। उसमें सुकाल नाम के यक्ष का यक्षायतन था। उक्त नगरी में अप्रतिहत नामक राजा राज्य करते थे। सुकृष्णा नाम की उनकी भार्या थी। उनके पुत्र का नाम महाचंद्रकुमार था। उसकी अर्हद्दत्ता नाम की भार्या थी। जिनदास नाम का पुत्र था। किसी समय श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। जिनदास ने भगवान् से द्वादशविध गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की जिज्ञासा प्रकट की और भगवान् ने इसके उत्तर में इस प्रकार फरमाया-

गौतम! माध्यमिका नाम की नगरी थी। महाराजा मेघरथ वहाँ के राजा थे। सुधर्मा अनगार को महाराजा मेघरथ ने भावपूर्वक निर्दोष आहार दान दिया, उसने मनुष्य भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर जन्म लेकर यावत् इसी जन्म में सिद्ध हुआ।

विवेचन- प्रस्तुत अध्ययन में जिनदास के जीवन-वृत्तान्त के संकलन में यदि कोई विशेषता हो तो मात्र इतनी ही कि इसके पितामह श्री अप्रतिहत

राजा और पितामही श्री सुकृष्णा देवी का भी इसमें उल्लेख है, जो प्राय: अन्य किसी अध्यायों के जीवनवृत्तों में उपलब्ध नहीं है। शेष कथावस्तु सुबाहुकुमार के समान ही है। विशिष्टता है तो इतनी ही कि इसी भव में (इसी जन्म में) यह मोक्ष को प्राप्त हुआ।

॥ सुखविपाक सूत्र का पंचम अध्ययन समाप्त॥

-----●-----

षष्ठम अध्ययन

धनपति

1- **छट्ठस्स उक्खेवो।**

छट्ठे अध्याय की प्रस्तावना भी पूर्ववत् ही समझ लेनी चाहिए।

2- **कणगपुरे णयरे। सेयासोए उज्जाणे। वीरभद्दो जक्खो। पियचंदे राया। सुभद्दा देवी। वेसमणे कुमारे जुवराया। सिरीदेवी पमोक्खाणं पंचसया तित्थयरागमणं। धणवई जुवरायपुत्ते जाव पुव्वभवपुच्छा। मणिवइया णयरी। मित्ते राया। संभूइविजए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।**

॥ सुहविवागस्स छट्ठं अज्झयणं समत्तं॥

जम्बू! कनकपुर नाम का नगर था। वहाँ श्वेताशोकनामक एक उद्यान था। वहाँ वीरभद्र नाम के यक्ष का यक्षायतन था। कनकपुर का राजा प्रियचंद्र था, उसकी रानी का नाम सुभद्रादेवी था। युवराज पदासीन पुत्र का नाम वैश्रमण कुमार था। उसका श्रीदेवी प्रमुख 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ था। किसी समय तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी पधारे। युवराज के पुत्र धनपति कुमार ने भगवान् से श्रावकों के व्रत ग्रहण किए यावत् गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की पृच्छा की। उत्तर में भगवान् ने कहा-

धनपतिकुमार पूर्वभव में मणिचयिका नगरी का राजा था। उसका नाम मित्र था। उसने संभूतिविजय नामक अनगार को शुद्ध आहार से प्रतिलाभित किया यावत् इसी जन्म में वह सिद्धगति को प्राप्त हुआ।

विवेचन- प्रस्तुत अध्ययन में धनपतिकुमार ने भी सुबाहुकुमार की ही तरह पूर्वभव में सुपात्र दान से मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया। भगवान् महावीर स्वामी के पास क्रमश: श्रावक धर्म व अन्त में मुनि धर्म की दीक्षा लेकर कर्मबन्धनों को तोड़कर मोक्ष प्राप्त किया।

इस भव व पूर्वभव में नामादि की भिन्नता के साथ-साथ सुबाहुकुमार व धनपति कुमार के जीवन में इतना ही अन्तर है कि सुबाहुकुमार देवलोकों में जाता हुआ और मनुष्य-भव प्राप्त करता हुआ अन्त में महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होगा जबकि धनपति कुमार इसी जन्म में निर्वाण को उपलब्ध हो गया।

॥ सुखविपाक सूत्र का षष्ठम् अध्ययन समाप्त॥

-----●-----

सप्तम अध्ययन

महाबल

1- **सत्तमस्स उक्खेवो।**

सातवें अध्याय का उत्क्षेप पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिए।

2- **महापुरे णयरे। रत्तासोगे उज्जाणे। रत्तपाओ जक्खो। बले राया। सुभद्दा देवी। महबले कुमारे। रत्तवईपामोक्खाणं पंचसया तित्थयरागमणं जाव पुव्वभव पुच्छा। मणिपुरे णयरे। णागदत्ते गाहावई। इन्ददत्ते अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।**

॥ सुहविवागस्स सत्तमं अज्झयणं समत्तं॥

जम्बू! महापुर नामक नगर था। वहाँ रक्तशोक नाम का उद्यान था। उसमें रक्तपाद यक्ष का यक्षायतन था। नगर में महाराज बल का राज्य था। सुभद्रा देवी नाम की उसकी रानी थी। महाबल नामक राजकुमार था। उसका रक्तवती प्रमुख 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह किया गया।

उस समय तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर स्वामी पधारे। तदनन्तर महाबल राजकुमार का भगवान् से श्रावकधर्म अंगीकार करना, गणधर देव का भगवान् से उसका पूर्वभव पूछना तथा भगवान् का प्रतिपादन करते हुए कहना-

गौतम! मणिपुर नाम का नगर था। वहाँ नागदत्त नाम का गाथापति रहता था। उसने इंद्रदत्त नाम के अनगार को पवित्र भावनाओं से निर्दोष आहार का दान देकर प्रतिलाभित किया तथा उसके प्रभाव से मनुष्य आयुष्य का बन्ध करके यहाँ पर महाबल के रूप में उत्पन्न हुआ। तदनन्तर उसने श्रमण दीक्षा स्वीकार कर यावत् सिद्धगति को प्राप्त किया।

॥ सुखविपाक सूत्र का सप्तम अध्ययन समाप्त॥

-----●-----

अष्टम अध्ययन

भद्रनन्दी

1- **अट्ठमस्स उक्खेवो।**

1- अष्टम अध्याय का उत्क्षेप पूर्व की भांति ही समझ लेना चाहिए।

2- **सुघोसे णयरे। देवरमणे उज्जाणे। वीरसेणो जक्खो। अज्जुणो राया। रत्तवइ देवी। भद्दणंदी कुमारे। सिरिदेवी पामोक्खाणं पंचसया जाव पुव्वभवपुच्छा। महाघोसे णयरे। धम्मघोसे गाहावई। धम्मसीहे अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।**

॥ सुहविवागस्स अट्ठमं अज्झयणं समत्तं॥

सुघोष नामक नगर था। वहाँ देवरमण नामक उद्यान था। उसमें वीरसेन नामक यक्ष का यक्षायतन था। सुघोष नगर में अर्जुन नामक राजा राज्य करता था। उसके रक्तवती नाम की रानी थी और भद्रनन्दी नाम का राजकुमार था। उसका श्रीदेवी आदि 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ। किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वहां पदार्पण हुआ। भद्रनन्दी ने भगवान् की देशना से प्रभावित होकर श्रावकधर्म अंगीकार किया। श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में पृच्छा की और भगवान् ने उत्तर देते हुए फरमाया-

गौतम! महाघोष नगर था। वहाँ धर्मघोष नाम का गाथापति रहता था। उसने धर्मसिंह नामक मुनिराज को निर्दोष आहार के दान से प्रतिलाभित कर मनुष्य-भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर उत्पन्न हुआ। यावत् साधुधर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके श्री भद्रनन्दी अनगार ने बन्धे हुए कर्मों का आत्यंतिक क्षय कर मोक्ष पद को प्राप्त किया।

विवेचन- सुबाहुकुमार और भद्रनन्दी के जीवन में इतना ही अन्तर है कि सुबाहुकुमार देवलोक आदि अनेक भव करके महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध होंगे जबकि भद्रनन्दी इसी भव में मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

॥ सुखविपाक सूत्र का अष्टम अध्ययन समाप्त॥

-----●-----

नवम अध्ययन

महाचंद्र

1- **नवमस्स उक्खेवो।**

नवम अध्ययन का उत्क्षेप पूर्व की भाँति जान लेना चाहिए।

2- **चम्पा णयरी। पुण्णभद्दे उज्जाणे। पुण्णभद्दो जक्खो। दत्ते राया। रत्तवई देवी। महचंदे कुमारे जुवराया। सिरीकन्ता पामोक्खाणं पंचसया जाव पुव्वभवपुच्छा। तिगिच्छिया णयरी। जियसत्तू राया। धम्मवीरिए अणगारे पडिलाभिए जाव सिद्धे।**

॥ सुहविवागस्स नवमं अज्झयणं समत्तं॥

जम्बू! चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नामक सुंदर उद्यान था। उसमें पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था। वहाँ के राजा का नाम दत्त था और रानी का नाम रक्तवती था। उनके युवराज पदासीन महाचंद्र नामक राजकुमार था। उसका श्रीकान्ता प्रमुख 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था।

एक दिन पूर्णभद्र उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। महाचंद्र ने उनसे श्रावकों के बारह व्रतों को ग्रहण किया। गणधर देव श्री गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की। भगवान् महावीर स्वामी ने उत्तर देते हुए फरमाया-

गौतम! चिकित्सिका नाम की नगरी थी। महाराजा जितशत्रु वहाँ राज्य करते थे। उसने धर्मवीर्य अनगार को प्रासुक-निर्दोष आहार पानी का दान देकर प्रतिलाभित किया, फलतः मनुष्य-आयुष्य को बान्धकर यहाँ उत्पन्न हुआ। यावत् श्रामण्य-धर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके महाचंद्र मुनि बन्धे हुए कर्मों का समूल क्षय कर परमपद को प्राप्त हुए।

इन सबके जीवन वृत्तान्तों में मात्र नामगत व स्थानगत भिन्नता के अतिरिक्त अर्थगत कोई भेद नहीं है।

॥ सुखविपाक सूत्र का नवम अध्ययन समाप्त॥

-----●-----

दशम अध्ययन

वरदत्त

1- **जइ णं भंते! दसमस्स उक्खेवो।**

दशम अध्ययन की प्रस्तावना पूर्व की भांति ही जाननी चाहिए।

2- **एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं साइए णामं णयरे होत्था। उत्तरकुरू उज्जाणे। पासामिओ जक्खो। मित्तणंदी राया। सिरिकन्ता देवी। वरदत्ते कुमारे। वीरसेणा-पामोक्खाणं पंचदेवीसया तित्थयरागमणं। सावगधम्मं। पुव्वभवपुच्छा। सयदुवारे णयरे। विमलवाहणे राया। धम्मरुई अणगारे पडिलाभिए मणुस्साउए णिबद्धे। इह उववण्णे। सेसं जहा सुबाहुस्स चिन्ता जाव पवज्जा। कप्पंतरिए जाव सव्वट्ठसिद्धे। तओ महाविदेहे जहा दढपइण्णेजाव सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खामंतं करेहिइ।**

'एवं खलु, जम्बू! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सुहविवागाणं दसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।'

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति बेमि।

॥ सुहविवागस्स दसमं अज्झयणं समत्तं॥

णमो सुहदेवयाए। विवागसुयस्स दो सुयखंधा दुहविवागे य सुहविवागे य। तत्थ दुहविवागे दस अज्झयणा एक्कसरगा दससु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति एवं सुहविवागे वि सेसं जहा आयारस्स॥१०॥

जम्बू! उस काल तथा उस समय में साकेत नाम का एक विख्यात नगर था। वहाँ उत्तरकुरु नाम का सुंदर उद्यान था। उसमें पाशमृग नामक यक्ष का यक्षायतन था। उस नगर के राजा मित्रनन्दी थे। उनकी श्रीकान्ता नाम की रानी थी। (उनका) वरदत्त नाम का राजकुमार था। कुमार वरदत्त का वीरसेना आदि 500 श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण-संस्कार हुआ था। तदनन्तर किसी समय उत्तरकुरु उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। वरदत्त ने देशना श्रवण कर भगवान् से श्रावकधर्म अंगीकार किया। गणधर श्री गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् श्री महावीर ने वरदत्त के पूर्वभव का वृत्तान्त इस प्रकार फरमाया-

गौतम! शतद्वार नाम का नगर था। उसमें विमलवाहन नामक राजा राज्य

करता था। उसने एकदा धर्मरुचि अनगार को आते हुए देखकर उत्कृष्ट भक्तिभावों से निर्दोष आहार का दान कर प्रतिलाभित किया। उसके पुण्यप्रभाव से शुभ मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया। वहाँ की भवस्थिति को पूर्ण करके इसी साकेत नगर में महाराजा मित्रनन्दी की रानी श्रीकान्ता की कुक्षि से वरदत्त के रूप के उत्पन्न हुआ।

शेष वृत्तान्त सुबाहुकुमार की तरह ही समझ लेना चाहिए। अर्थात् भगवान् के विहार कर जाने के बाद पौषध-शाला मैं पौषधोपवास करना, भगवान् के पास दीक्षित होने वालों को पुण्यशाली बतलाना और भगवान् के पुनः पधारने पर दीक्षित होने का संकल्प करना। यह सब सुबाहुकुमार व वरदत्त कुमार दोनों के जीवन में समान ही है। तदनन्तर दीक्षित होकर संयम व्रत का पालन करते हुए मनुष्य-भव से देवलोक और देवलोक से मनुष्यभव, देवलोकों में भी बीच-बीच के एक-एक देवलोक को छोड़कर-सुबाहु के समान ही गमनागमन करते हुए अन्त में सुबाहुकुमार की ही तरह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर, वहाँ पर चारित्र की सम्यक् आराधना से कर्मरहित होकर मोक्षगमन भी समान ही समझना चाहिए।

वरदत्तकुमार का जीव देवलोक तथा मानवीय अनेक भवों को धारण करता हुआ अन्त में सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होगा, वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न हो, दृढ़प्रतिज्ञ की तरह सिद्धगति को प्राप्त करेगा।

जम्बू! इस प्रकार यावत् मोक्ष संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सुखविपाक के दशम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है।

ऐसा मैं कहता हूँ।

जम्बू स्वामी- भगवन्! आपका सुखविपाक का कथन, जैसे कि आपने फरमाया है, वैसा ही है, वैसा ही है।

॥ सुखविपाक सूत्र का दशम अध्ययन समाप्त ॥

अर्थ- श्रुत देवता को नमस्कार हो। विपाक सूत्र के दो श्रुत स्कन्ध हैं- एक दुख विपाक और दूसरा सुख विपाक। उनमें से दुख विपाक में दस अध्ययन हैं और वे एक सरीखे हैं। इनका उपदेश दस दिनों में ही दिया जाता है। इसी प्रकार सुखविपाक भी जानना चाहिए। शेष सब आचारांग की तरह जानना चाहिए।

॥ सुखविपाक समाप्त॥

-----●-----

तत्त्व विभाग

1. दया का थोकड़ा

श्री गौतम स्वामी भगवान् से हाथ जोड़कर प्रश्न पूछते हैं- **भंते! साधु जी कितनी विस्वा दया पाले और श्रावकजी कितनी विस्वा दया पाले?**

गौतम! साधु जी 20 विस्वा दया पाले और श्रावक जी सवा विस्वा दया पाले। (विस्वा एक भूमि का नाप है जो एक बीघा का बीसवां हिस्सा है। बीस विस्वा पूर्णता का वाचक है)। अणगारों की अहिंसा पूर्ण अहिंसा है अतएव उसे बीस विस्वा माना गया है। अणगार की बीस विस्वा दया के अनुपात में श्रावक की दया सवा विस्वा होती है।

भगवन्! इसका क्या कारण है?

गौतम! जीव के दो भेद- त्रस और स्थावर। श्रावकजी त्रस जीवों की विराधना नहीं करते किन्तु भूमि खोदे, कच्चा पानी पीवे, अग्नि का आरंभ समारंभ करे, खुले मुंह बोले, झटकन-फटकन करे, कच्ची लीलोती (हरी वनस्पति) का उपयोग करे, इस प्रकार स्थावर जीवों की विराधना से नहीं बच सकते। जिससे उनकी दया दस विस्वा घट गई।

दस विस्वा (त्रस-जीव) के करे दो भेद- संकल्पजा और आरंभजा। श्रावक जी संकल्पजा हिंसा नहीं करे किन्तु हाट करे, हवेली रखे, खेती-बाड़ी करे, बेटा बेटी का परिणय करे, जिससे उनकी दया पाँच विस्वा घट गई।

पांच विस्वा (संकल्पजा हिंसा) के करे दो भेद- निरपराधी और सापराधी। श्रावकजी निरपराधी जीवों को नहीं मारे किन्तु श्रावकजी के ऊपर कुटुम्ब का, देश का, राष्ट्र का भार रहता है। श्रावक जी के घर कोई लम्पट पुरुष उसकी स्त्री से व्याभिचार सेवे तो सजा देवे, चोर-चोरी करे तो दण्ड देवे, जिससे उनकी दया ढाई विस्वा घट गई।

निरपराधी के करे दो भेद- निरपेक्ष और सापेक्ष। श्रावकजी निरपेक्ष, निरपराधी जीवों की दया पाले, किन्तु सापेक्ष की दया नहीं पाल सकते। कारण है कि श्रावक जी घोड़े को चाबुक से, हाथी को अंकुश से, बैल आदि को कामी से वश में करते हैं। जानवरों के शरीर में जीव पड़ जाए तो दवा आदि लगावे जिससे उनकी दया सवा विस्वा घट गई। सवा विस्वा दया ही शेष रह जाती है।

परिशिष्ट- यह परिगणना श्रावक के प्रथम अणुव्रत की अपेक्षा से है।

श्रावक की यह 'सवा विस्वा दया' साधु की अपेक्षा से 16 वां भाग है। तथापि इसमें भी सजग एवं विवेकी व्रती श्रावक 18.75 विस्वा दया पाल सकता है।

श्रावक प्रथम व्रत से आगे बढ़कर जैसे-जैसे अपनी अहिंसा की परिधि को बढ़ाता जाता है वैसे-वैसे उसकी अहिंसा का क्षेत्र (दायरा) बढ़ता जाता है और जब श्रावक 12 व्रत अंगीकार करता है तब उसकी अहिंसा 18.75 (पौने उन्नीस) विस्वा हो जाती है और सिर्फ सवा विस्वा अहिंसा खुली रहती है।

विशेष जानकारी के लिए देखिये- **'जिणधम्मो'**-आचार्य श्री नानेश।

-----●-----

2. तीन जागरणा का थोकड़ा

(श्री भगवतीसूत्र, शतक 12 वाँ, उद्देशक पहला)

भंते! जागरणा कितने प्रकार की है?

गौतम! जागरणा तीन प्रकार की होती है। यथा- बुद्ध जागरणा, अबुद्ध जागरणा एवं सुदृष्ट (सुदक्खु) जागरणा।

1. केवलज्ञान व केवलदर्शन के धारक अरिहन्त भगवन्तों की जागरणा बुद्ध जागरणा है।
2. समिति-गुप्तियों से युक्त अणगार भगवंतों की अबुद्ध जागरणा है।
3. जीवाजीव के ज्ञाता श्रमणोपासक की सुदृष्ट जागरणा है।

अन्यत्र ग्रन्थों में जागरणा तीन प्रकार की है-

1. धर्म जागरणा, 2. अधर्म जागरणा, 3. सुदक्खु जागरणा।

(1) **धर्म जागरणा के 4 भेद**

1. आचार धर्म, 2. क्रिया धर्म, 3. दया धर्म, 4. स्वभाव धर्म।

(1) **आचार धर्म-** के मूल भेद 5, उत्तर भेद - 39

1. ज्ञानाचार, 2. दर्शनाचार, 3. चारित्रचार, 4. तपाचार 5. वीर्याचार (ज्ञानाचार के 8, दर्शनाचार के 8, चारित्रचार के 8, तपाचार के 12, वीर्याचार के 3 भेद, ये सब मिलाकर 39 उत्तर भेद हुए)।

ज्ञानाचार के 8 भेद -

1. **कालाचार**- शास्त्र में जिस समय जो सूत्र पढ़ने की आज्ञा है उस समय ही उसे पढ़ना।
2. **विनयाचार**- ज्ञानदाता गुरु का विनय करना।
3. **बहुमानाचार**- ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय में भक्ति और श्रद्धा के भाव रखना।
4. **उपधानाचार**- ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना।
5. **अनिह्नवाचार**- ज्ञान एवं ज्ञान पढ़ाने वाले गुरु का नाम नहीं छिपाना।
6. **व्यंजनाचार**- सूत्र का शुद्ध उच्चारण करना।
7. **अर्थाचार**- सूत्र का शुद्ध एवं सत्य अर्थ करना।
8. **तदुभयाचार**- सूत्र का विस्तृत विवेचन शुद्ध रूप से करना।

दर्शनाचार के 8 भेद-

1. **निःशंकित**- वीतराग सर्वज्ञ के वचनों में संदेह नहीं करना।
2. **निष्कांक्षित**- परदर्शन की वांछा नहीं करना।
3. **निर्विचिकित्सा**- धर्म के फल में संदेह नहीं करना।
4. **अमूढ़दृष्टि**- पाखण्डियों (मिथ्यामत) का आडम्बर देखकर उसमें मोहित न होना।
5. **उपवृहण** - गुणी पुरुषों को देखकर उनके गुणों की प्रशंसा करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना।
6. **स्थिरीकरण**- धर्म से डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करना।
7. **वात्सल्य**- अपने धर्म से एवं स्वधर्मी बंधुओं से वात्सल्य रखना।
8. **प्रभावना**●- आठ प्रकार की प्रभावनाओं से वीतराग प्ररूपित धर्म की उन्नति करना, प्रचार करना, दिपाना।

चारित्राचार के 8 भेद-

1. ईर्या समिति 2. भाषा समिति 3. एषणा समिति 4. आदान भंड मात्र निक्षेपणा समिति 5. उच्चार प्रस्रवण खेल जल्ल सिंघाण परिष्ठापनिका समिति 6. मन गुप्ति 7. वचन गुप्ति 8. काया गुप्ति।

● आठ प्रकार की प्रभावना का वर्णन जानने के लिये देखें- 'समकित के 67 बोल'

तपाचार के 12 भेद- छः बाह्य तप और छः आभ्यंतर तप।

बाह्य तप- 1. अनशन 2. ऊनोदरी 3. भिक्षाचर्या 4. रस परित्याग 5. काय क्लेश 6. प्रतिसंलीनता।

आभ्यंतर तप- 1. प्रायश्चित 2. विनय 3. वैयावृत्य 4. स्वाध्याय 5. ध्यान 6. व्युत्सर्ग।

ये 12 प्रकार के तप, इहलोक और परलोक के भौतिक सुख एवं यश कीर्ति की वांछा से रहित होकर मात्र कर्म निर्जरा के लिए करना।

वीर्याचार के 3 भेद-

1. धर्म के कार्य में बलवीर्य को छिपावें नहीं।
2. पूर्वोक्त 36 बोलों में उद्यम करें।
3. शक्ति अनुसार धर्म कार्य करें।

(2) **क्रियाधर्म के 2 भेद**-

1. करणसत्तरी, 2. चरणसत्तरी।

1. **करणसत्तरी के 70 भेद**-(जो कार्य प्रयोजन होने पर किया जाए)।

पिंड विसोही समिई भावणा पडिमा इंदियाणिग्गहो य।
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गहं चेव करणं तु।

4 प्रकार की पिण्ड विशुद्धि, 5 समिति, 12 भावना, 12 भिक्षु प्रतिमा, 5 इन्द्रियों का निरोध, 25 प्रकार की प्रतिलेखना, 3 गुप्ति, 4 अभिग्रह-ये सब मिलाकर 70 भेद हुए।

2. **चरणसत्तरी** (जो हमेशा काम में आता है) **के 70 भेद**-

वय समण धम्म, संजम वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ
नाणाइतियं तव, कोहणिग्गहाइ चरणमेयं।

5 महाव्रत, 10 यतिधर्म, 17 प्रकार का संयम, 10 प्रकार की वैयावच्च, 9 वाड़ ब्रह्मचर्य की, 3 रत्न (ज्ञान, दर्शन, चारित्र), 12 प्रकार का तप, 4 कषाय का निग्रह- ये सब मिलाकर 70 भेद हुए।

(3) **दयाधर्म के 8 भेद**-

1. **स्वदया**- अपनी आत्मा को पाप से बचाना।
2. **परदया**- दूसरे जीवों की रक्षा करना।
3. **द्रव्य दया**- देखादेखी, लज्जा से या कुलाचार से दया पालना।

4. **भावदया**- ज्ञान से जीव को जीवात्मा जानकर उस पर अनुकंपा लाकर बचाना (जीव की रक्षा करना)।
5. **व्यवहारदया**- श्रावक के लिए जिस तरह दया पालना कहा है- उसी तरह दया पालना, घर का कार्य करते हुए यतना रखना।
6. **निश्चयदया**- अपनी आत्मा को कर्मबंधन से छुड़ाना। पुद्‌गल परवस्तु है उस पर से ममता उतारकर उसका परिचय छोड़कर आत्मगुण में रमण करना। जीव का कर्मरहित शुद्ध स्वरूप प्रगट करना। यह निश्चय दया 14वें गुणस्थान के अंत में पूर्णरूप से प्राप्त होती है।
7. **स्वरूपदया**- किसी जीव को मारने के लिए उसको पहले अच्छी तरह खिलाते हैं, सार संभाल करते हैं व उसके शरीर को पुष्ट करते हैं। यह ऊपर से दिखावा मात्र है। क्योंकि पीछे उसको मारने के परिणाम हैं। जैसे कि उत्तराधयन के सातवें अधययन में बकरे का दृष्टांत दिया गया है। यहाँ बकरे को खिलाना पिलाना स्वरूप दया है।
8. **अनुबन्ध दया**- जीव को ऊपर से तकलीफ देवे किन्तु अंदर के परिणाम उसकी साता पहुँचाने के हैं। जैसे- माता पुत्र का रोग मिटाने के लिए उसे कड़वी औषधि पिलाती है किन्तु अंदर में उसका भला चाहती है। जैसे पिता पुत्र को अच्छी शिक्षा देने के लिए ऊपर से ताड़ना तर्जना करता है मारता पीटता है किन्तु अन्दर में उसका भला चाहता है। जैसे डॉ. रोगी की चीर-फाड़ करता है जो देखने में भयंकर है किन्तु अन्दर का परिणाम उसका रोग मिटाकर अच्छा करने का है।

(4) **स्वभाव धर्म के 2 भेद**-

(1) जीव स्वभाव धर्म, (2) अजीव स्वभाव धर्म।

जीव स्वभाव धर्म के दो भेदः- शुद्ध स्वभाव धर्म और अशुद्ध स्वभाव धर्म। जीव को विषय-कषाय के संयोग से विभाव परिणति होती है वह जीव का अशुद्ध स्वभाव धर्म है। उस विभाव परिणति को दूर करके जीव अपने ज्ञानादि गुणों में रमण करता है, वह जीव का शुद्ध स्वभाव धर्म है।

पुद्‌गल का परमाणु पुद्‌गल के रूप में रहना शुद्ध स्वभाव धर्म है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चारों के क्रमशः चलनगुण, स्थिरतागुण, अवगाहनगुण और वर्तनगुण ये इनके शुद्ध स्वभाव धर्म हैं। ये अपने-अपने

स्वभाव को छोड़ते नहीं हैं।

इस प्रकार धर्म जागरणा के ये चार भेद बताये गए हैं।

(2) **अधर्म जागरणा**

संसार में धन, कुटुम्ब, परिवार का संयोग मिलाना, उनके लिए आरम्भादिक करना, धन की रक्षा करना, उसमें एकाग्रदृष्टि रखना यह अधर्म जागरणा है।

(3) **सुदक्खु जागरणा**

'सु' का मतलब है भली (अच्छी) दक्खु का मतलब है चतुराईवाली जागरणा। यह जागरणा श्रावक के होती है। क्योंकि श्रावक सम्यक् ज्ञान दर्शन सहित है। वह धन कुटुम्बादिक को तथा विषय कषाय को बुरा समझता है। इनसे देशतः निवृत्त होता है। उदयभाव से उदासीनपने संसार में रहता है। तीन मनोरथ का चिन्तन करता है। इसे सुदक्खु जागरणा कहते हैं।

-----●-----

3. मोक्ष का मूल संयम

(श्री भगवती सूत्र, शतक चौदहवां उद्देशक नौवां)

यहाँ आगमकारों ने तेय लेस्सं का प्रयोग किया है, इसका तात्पर्य है कि साधु का तेज संयम पर्याय के साथ बढ़ता जाता है तथा यथायोग्य रूप से वह देवों के तेज (परिणाम धारा) का अतिक्रमण करता हुआ चला जाता है। गौतम स्वामी भगवान् से प्रश्न पूछते हैं, **भगवन!** जो ये श्रमण निर्ग्रन्थ आर्यत्व युक्त (पाप रहित) होकर विचरण करते हैं, वे किसकी तेजोलेश्या (तेज सुख) का अतिक्रमण करते हैं?

गौतम!-

1. एक मास की प्रव्रज्या वाला साधु वाणव्यंतर देवों के तेज का उल्लंघन करता है अर्थात् 1 माह की प्रव्रज्या वाले मुनि का तेज वाणव्यंतर देवों से भी बढ़कर है।
2. 2 मास की प्रव्रज्या वाला साधु नागकुमार आदि नवनिकाय के देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।

3. 3 मास की प्रव्रज्या वाला साधु असुर कुमार देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
4. 4 मास की प्रव्रज्या वाला साधु ग्रह नक्षत्र तारा इन ज्योतिषी देवों के सुखों का उल्लंघन कर जाता है।
5. 5 मास की प्रव्रज्या वाला साधु चन्द्रमा सूर्य देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
6. 6 मास की प्रव्रज्या वाला साधु 1-2 देवलोक के देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
7. 7 मास की प्रव्रज्या वाला साधु 3-4 देवलोक के देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
8. 8 मास की प्रव्रज्या वाला साधु 5-6 देवलोक के देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
9. 9 मास की प्रव्रज्या वाला साधु 7-8 देवलोक के देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
10. 10 मास की प्रव्रज्या वाला साधु 9-10-11-12 देवलोक के देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
11. 11 मास की प्रव्रज्या वाला साधु नव ग्रैवेयक देवलोक के देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
12. 12 मास की प्रव्रज्या वाला साधु पाँच अनुत्तर देवलोक के देवों के तेज का उल्लंघन कर जाता है।
13. इसके बाद अधिकाधिक शुद्ध (शुद्ध और शुद्धतर) परिणाम वाला होकर सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

-----●-----

4. श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ

श्रावक सम्यक्त्व पूर्वक बारह व्रत धारण करता है किन्तु वह इतना करके ही नहीं रुक जाता है। वह इन व्रतों का निरतिचार पालन करने के लिए विशेष रूप से अनुशीलन करने के लिए और उनमें ठोस दृढ़ता लाने के लिए विशेष प्रकार की प्रतिज्ञाएँ लेता है। शास्त्र में इस प्रकार की विशेष

प्रतिज्ञाओं को प्रतिमा (पडिमा) कहा गया है। शास्त्रकारों ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का निरूपण किया है। उनके नाम और स्वरूप इस प्रकार हैं:-

1. दर्शन प्रतिमा, 2. व्रत प्रतिमा, 3. सामायिक प्रतिमा, 4. पौषधोपवास प्रतिमा, 5. कायोत्सर्ग प्रतिमा, 6. ब्रह्मचर्य प्रतिमा, 7. सचित्त त्याग प्रतिमा, 8. आरंभ त्याग प्रतिमा, 9. प्रेष्य-त्याग प्रतिमा, 10. अनुमति-उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा और 11. श्रमणभूत प्रतिमा।

1. **दर्शन प्रतिमा**:- वैसे तो सम्यक्दर्शन होने के पश्चात् ही वास्तविक श्रावकत्व आता है, अत: बारह व्रत धाारण कर लेने से सम्यग्दर्शन का स्वयमेव उसमें अन्तर्भाव हो जाता है। ऐसी स्थिति में पुन: दर्शन प्रतिमा स्वीकार करने का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान यह है कि व्रत ग्रहण से पूर्व जो सत्य तत्वाभिरुचिरूप दर्शन होता है, उसमें अतिचारों के लगने की संभावना रहती है। सम्यक्दर्शन और व्रत ग्रहण के पश्चात् भी दर्शन में मलिनता रह सकती है। अतएव उसका निराकरण करने के लिए और पूर्वगृहीत सम्यक् तत्त्व का शंका-कांक्षा आदि अतिचारों से सर्वथा दूर रहकर शुद्ध रीति से पालन करने के लिए दर्शन-प्रतिमा स्वीकार की जाती है। इस प्रतिमा का समय एक मास है। एक मास पर्यन्त दर्शन में किसी प्रकार की मलिनता न आने देना और दर्शन को विशिष्ट दृढ़ता पर पहुँचा देना इस प्रतिमा का प्रयोजन है।

2. **व्रत प्रतिमा**:- दर्शन की परिपूर्णता-दृढ़ता हो जाने के पश्चात् व्रतों को दृढ़ करना होता है, अत: पूर्व स्वीकृत व्रतों को विशेष दृढ़ करने के लिए यह प्रतिमा अंगीकार की जाती है। इसमें अणुव्रत, गुणव्रत आदि व्रतों का निर्मल-निरतिचार रूप से पालन किया जाता है, परन्तु सामायिक व्रत और देशावकाशिक व्रत का पालन पहले की तरह ही किया जाता है अर्थात् इन दो व्रतों को छोड़ कर शेष व्रतों का अतिचार रहित निर्मल रीति से पालन किया जाता है। इस प्रतिमा का समय दो मास का है।

3. **सामायिक प्रतिमा**:- इस प्रतिमा में सामायिक और देशावकाशिक व्रत का भी निरतिचार विशुद्ध रीति से दृढ़तापूर्वक पालन किया जाता है परन्तु पर्व तिथियों पर किये जाने वाले पौषध व्रत का निरतिचार पालन करने में शिथिलता रह जाती है। इस प्रतिमा में पौषध व्रत को छोड़कर शेष व्रतों का निरतिचार पालन और आराधन किया जाता है। इस प्रतिमा का समय तीन मास का है।

4. **पौषधोपवास प्रतिमा**:- इस प्रतिमा में पौषधव्रत का भी निरतिचार

पालन व आराधन किया जाता है। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को उपवास युक्त पौषध व्रत की निर्मल आराधना करना इसका प्रयोजन है। इसकी अवधि चार मास की है।

5. **कायोत्सर्ग प्रतिमाः**- इस प्रतिमा में पौषध की सारी रात्रि कायोत्सर्ग अवस्था में व्यतीत की जाती है। इस प्रतिमा को धारण करने वाला उपासक सर्व स्नान का त्याग कर देता है, रात्रि भोजन का त्याग कर देता है, धोती की लांग खुली रखता है, दिन में ब्रह्मचारी रहता है, रात्रि में ब्रह्मचर्य की मर्यादा करता है। पाँच मास पर्यन्त इस तरह की आराधना की जाती है।

6. **ब्रह्मचर्य प्रतिमाः**- इस प्रतिमा में पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। शेष सब आचार-विधि पाँचवीं प्रतिमा के समान है। इसकी अवधि छह मास की है।

7. **सचित्त त्यागः**- इस प्रतिमा में उपासक सचित्त आहार का त्याग कर देता है। इसकी अवधि सात मास की है।

8. **आरम्भ त्यागः**- इस प्रतिमा में उपासक आरम्भ का त्याग कर देता है। वह स्वयं किसी प्रकार का आरंभ (हिंसा) नहीं करता। इसकी अवधि आठ मास की है।

9. **प्रेष्य त्यागः**- इस प्रतिमा में उपासक दूसरों के द्वारा आरंभ कराने का त्याग कर देता है। वह नौकर-चाकर आदि के द्वारा भी आरम्भ का कोई काम नहीं करवाता है। इसका समय नौ मास का है।

10. **अनुमति-उद्दिष्ट त्यागः**- इस प्रतिमा में उपासक अपने उद्देश्य से तैयार किये हुए आहारादि का भी त्याग कर देता है। वह क्षुर मुण्डन करता है और शिखा धारण करता है। इस प्रतिमा को धारण किये हुए उपासक को यदि उसके सम्बन्धीजन पूछें कि जमीन आदि में स्वर्णादि द्रव्य रखा हुआ, आप जानते हैं? यदि वह जानता हो तो ''मैं जानता हूँ'' और यदि नहीं जानता हो तो ''नहीं जानता हूँ'' इतना कहना मात्र कल्पता है। इसके अतिरिक्त उसको अधिक गृहकृत्य करना नहीं कल्पता है। यदि वह इतना भी न करे तो कुटुम्बियों की वृत्ति का छेद हो जाय। अतः इतना गृहकृत्य उसके लिए खुला है। इसकी अवधि दस मास की है।

11. **श्रमणभूत प्रतिमाः**- आगमों में ग्यारहवीं श्रमणभूत प्रतिमा के धारक श्रावक को भिक्षा गमन की अनुमति दी गई है। इसके अलावा अन्य

किसी भी श्रावक को चाहे वह दया में हो या संवर में, भिक्षा करने की अनुमति आगमकारों ने नहीं दी है। इस प्रतिमा में श्रावक साधु के समान हो जाता है। वह मस्तक के बालों का मुण्डन करवा लेता है या लोच करता है, वह साधु का आचार और भण्डोपकरण ग्रहण कर साधु के वेष में श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए प्रतिपादित धर्म को सम्यक् रूप से काय से स्पर्श करता हुआ-पालन करता हुआ विचरता है। वह चलते समय युगमात्र प्रमाण भूमि को देखता हुआ यतनापूर्वक गमन करता है। घरों में भी भिक्षावृत्ति के लिए जाता है। भिक्षावृत्ति के लिए जाते हुए यदि कोई उससे पूछे कि ''आयुष्मन्! तुम कौन हो? तब उसे कहना चाहिए कि ''मैं प्रतिमा-प्रतिपन्न श्रमणोपासक हूँ।'' इस प्रतिमा की अवधि ग्यारह मास की है। इस प्रतिमा में श्रावक लगभग साधु की कोटि में पहुँच जाता है।

पाँचवीं प्रतिमा से लेकर 11वीं प्रतिमा तक की जघन्य काल अवधि एक, दो, तीन दिन की कही गई है। उत्कृष्ट अवधि प्रत्येक प्रतिमा के साथ बताई गई है। यदि इन प्रतिमाओं को धारण करने वाला श्रावक वर्द्धमान परिणाम के कारण दीक्षित हो जाय या आयु पूर्ण कर ले तो जघन्य या मध्यम काल की उसकी अवधि समझनी चाहिए। यदि दोनों में से कुछ भी न हो तो प्रतिमा का काल उत्कृष्ट समझना चाहिए।

सब प्रतिमाओं का समय कुल मिलाकर साढ़े पाँच वर्ष (66 माह) होता है।

उक्त रीति से शास्त्रों में श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का निरूपण किया गया है। इन प्रतिमाओं की यथाविधि आराधना करने वाला उत्कृष्ट श्रावक कहा जाता है। श्रावकाचार की यह उत्कृष्ट स्थिति है। इसमें श्रावकत्व की परिपूर्ण आराधना है।

-----●-----

5. गुणस्थान▲ स्वरूप

गुणस्थानों के अट्ठाईस द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं:- 1. नाम, 2. लक्षण,

---

▲ **टिप्पण**- संसारी आत्मा के ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों की शुद्धि-अशुद्धि और उत्कर्ष-अप्कर्ष की अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं।

3. स्थिति, 4. क्रिया, 5. सत्ता, 6. बंध, 7. उदय, 8. उदीरणा, 9. निर्जरा, 10. भाव, 11. कारण, 12. परीषह, 13. आत्मा, 14. जीव के भेद, 15. गुणस्थान, 16. योग, 17. उपयोग, 18. लेश्या, 19. हेतु, 20. मार्गणा, 21. ध्यान, 22. दण्डक, 23. निमित्त, 24. चारित्र, 25. आकर्ष, 26. समकित, 27. अन्तर और 28. अल्पबहुत्व।

1. नाम द्वार

गुणस्थानों के नाम - 1. मिथ्यादृष्टि गुणस्थान■, 2. सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान, 3. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान, 4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान, 5. देशविरत गुणस्थान, 6. प्रमत्त-संयत गुणस्थान, 7. अप्रमत्त संयत गुणस्थान, 8. निवृत्ति-बादर गुणस्थान, 9. अनिवृत्ति-बादर गुणस्थान, 10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान, 11. उपशांत मोहनीय गुणस्थान, 12. क्षीण मोहनीय गुणस्थान, 13. सयोगिकेवलि गुणस्थान, 14. अयोगिकेवलि गुणस्थान।

2. लक्षण द्वार

1. **मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का लक्षण**- जिनेश्वर भगवान की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे, जिन-मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा में धर्म माने या प्ररूपे, कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्र पर आस्था रखे अथवा तत्त्व श्रद्धा का अभाव, जीव के ऐसे भाव को पहला 'मिथ्यादृष्टि गुणस्थान' कहते हैं। मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव पहले गुणस्थान में रहते हैं।

पहले गुणस्थान का फल- कर्मरूपी डंडे से आत्मा रूपी गेंद चार गति चौबीस दण्डक और चौरासी लाख जीव-योनियों में बारम्बार परिभ्रमण

■ श्रीमद् समवायांग सूत्र के 14वें समवाय में जीवस्थान (जीव समुदाय) के चौदह प्रकार बतलाये गये हैं। कर्मग्रन्थ आदि में इसके स्थान पर 'गुणस्थान' शब्द का प्रयोग किया है। 'जीवस्थान' में गुण सम्पन्न जीवों का तथा 'गुणस्थान' में जीवों के गुणों का उल्लेख है। अत: आगम में 'मिथ्यात्व' 'सास्वादन' आदि गुणपरक कथन न होकर गुणीपरक कथन है। आगमिक भेदों को कायम रखते हुए चौदह ही भेदों में समरसता लाने के लिये थोकड़े में 'मिथ्यात्व' आदि के स्थान पर 'मिथ्यादृष्टि' आदि का प्रयोग करना उपयुक्त लगता है।

गुणस्थानों के वर्णन में गुणों के भेद होने से सर्वत्र मिथ्यादृष्टि का गुणस्थान- मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, सास्वादन सम्यग् दृष्टि का गुणस्थान-सास्वादन सम्यग् दृष्टि गुणस्थान आदि (षष्ठी तत्पुरुषपरक) अर्थ समझना चाहिए।

कर दु:ख भोगती रहती है।

2. **दूसरे गुणस्थान का लक्षण**- जो औपशमिक सम्यक्त्वी जीव अनन्तानुबन्धाी कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्व की ओर झुक रहा है किन्तु अभी मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं किया है उसकी इस अवस्था विशेष को सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं। जैसे किसी ने खीर का भोजन किया और बाद में वमन कर दिया तो उसे कुछ गुड़चटा-सा स्वाद रहता है अथवा जैसे घंटे से गंभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसकी रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है, उसके समान अथवा आत्मारूपी आम्र वृक्ष की परिणामरूपी डाली से मोहरूपी वायु चलने से समकित रूपी फल टूट गया परन्तु पृथ्वी पर नहीं पहुँचा, बीच ही में है तब तक के परिणाम को ''सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान'' कहते हैं।

3. **तीसरे गुणस्थान का लक्षण**- इस गुणस्थान में रहे जीवों को तत्त्व या अतत्त्व किसी में भी न रुचि होती है, न अरुचि।

इस विषय में नारिकेल द्वीप के मनुष्यों का दृष्टांत है यथा जिस द्वीप में खाने के लिए सिर्फ नारियल ही होते हैं, उसे नारिकेल द्वीप कहते हैं। वहाँ मनुष्यों ने न अन्न को देखा है और न ही उसके विषय में कुछ सुना है। अतएव उनको अन्न में रुचि नहीं होती और न अरुचि ही होती है। इसी प्रकार जब मिश्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब जीव को जैन धर्म और अन्य धर्मों में प्रीति नहीं होती और अप्रीति भी नहीं होती।

4. **चौथे गुणस्थान का लक्षण**- सात प्रकृतियों का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है उसे चौथा ''अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान'' कहते हैं। वे सात प्रकृतियाँ ये हैं- 1. अनन्तानुबन्धाी क्रोध, 2. अनन्तानुबन्धी मान, 3. अनन्तानुबन्धी माया, 4. अनन्तानुबन्धी लोभ, 5. मिथ्यात्व मोहनीय, 6. मिश्र मोहनीय, 7. सम्यक्त्व मोहनीय।

जिनका उदय तात्त्विक रुचि का निमित्त होकर भी औपशमिक या क्षायिक भाववाली तत्त्व रुचि का प्रतिबन्ध करता है, ऐसे सम्यक्त्व का घात करने में असमर्थ मिथ्यात्व के शुद्ध दलिकों को सम्यक्त्व मोहनीय कहते हैं।

इस गुणस्थान में प्रमुखता से तीन प्रकार का सम्यक्त्व हो सकता है-

(अ) **क्षायिक सम्यक्त्व**- इसमें चार अनन्तानुबन्धी एवं तीन दर्शन मोहनीय इन सात प्रकृतियों का सर्वथा क्षय हो जाता है।

(ब) **उपशम सम्यक्त्व**- इसमें चार अनन्तानुबन्धी का उपशम या क्षयोपशम या विसंयोजना एवं तीन दर्शन मोहनीय का उपशम हो जाता है अर्थात् इनका उदय सर्वथा रूक जाता है।

(स) **क्षयोपशम सम्यक्त्व**- इसमें सम्यक्त्व मोहनीय के विपाकोदय अर्थात् फल की अनुभूति कराने वाले उदय की नियमा होती है। शेष 6 प्रकृतियाँ चार अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्व मोहनीय एवं मिश्र मोहनीय का विपाकोदय नहीं होता है।❖ चौथे गुणस्थान में आया हुआ जीव जीवादिक नव पदार्थ का जानकार होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि से लेकर वर्षीतप को उपादेय जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे परन्तु पालन नहीं कर सकता क्योंकि वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।▲ अविरत सम्यग्दृष्टि को दर्शन श्रावक भी कहा जाता है।

5. **देशविरत गुणस्थान**- प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय के कारण जो जीव पापजनक क्रियाओं से सर्वथा तो नहीं किन्तु अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने के कारण देश (अंश) से पापजनक क्रियाओं से अलग हो सकते हैं, वे देशविरत कहलाते हैं। देशविरत को व्रती श्रावक भी कहते हैं। इनका स्वरूप विशेष देशविरत गुणस्थान है। इस गुणस्थान में आया हुआ जीव, जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है। नवकारसी आदि से लेकर वर्षीतप आदि जानता है, श्रद्धान करता है, प्ररूपणा करता है और शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करता है। एक व्रत से लेकर श्रावक के बारह व्रत तक, एक से लेकर ग्यारह प्रतिमा तक पालन करे यावत् संलेखना संथारा करे।

6. **प्रमत्त संयत गुणस्थान**- प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से जो जीव पापजनक व्यापारों से सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं वे संयत (मुनि) हैं। लेकिन संयत भी जब तक प्रमाद का सेवन करते हैं तब तक वे प्रमत्त संयत कहलाते हैं, और उनके स्वरूप विशेष को प्रमत्त संयत गुणस्थान कहते हैं।

7. **अप्रमत्त संयत गुणस्थान**- जो संयत (मुनि) विकथा, कषाय आदि

❖ इन छ: प्रकृतियों के विपाकोदय के अभाव में क्षय, क्षयोपशम, उपशम आदि की अपेक्षा अनेक भंग होते हैं। थोकड़े में उस विस्तार को गौण किया गया है। विशेष जिज्ञासु कर्म सिद्धान्त का अधययन करें।

▲ अप्रत्याख्यानी कषाय के उदय से एकदेश संयम भी पालन नहीं कर सकता।

प्रमादों को नहीं सेवते हैं, वे अप्रमत्त संयत हैं यद्यपि सातवें से चौदहवें गुणस्थान तक के सभी जीव अप्रमत्त संयत हैं लेकिन जिन अप्रमत्त संयतों के अध्यवसाय आठवें गुणस्थान की अपेक्षा मंद विशुद्धि वाले हैं उनका स्वरूप विशेष अप्रमत्त संयत गुणस्थान कहलाता है इस गुणस्थान में व्यक्त प्रमाद नष्ट हो चुके हैं किन्तु संज्वलन कषाय एवं नोकषायों का मंद उदय रहता है।

8. **निवृत्ति बादर गुणस्थान**- निवृत्ति अर्थात् सम समयवर्ती त्रैकालिक जीवों के अध्यवसायों की भिन्नता एवं बादर अर्थात् बादर कषाय का उदय-ये दोनों अवस्थाएँ होने से आठवें गुणस्थान को निवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में स्थिति घात, रसघात, गुण श्रेणी, गुण संक्रमण एवं स्थिति बंध ये पाँच कार्य पहले के गुणस्थानों की अपेक्षा अपूर्व होते हैं, अतः इसे अपूर्व करण गुणस्थान भी कहते हैं।

9. **अनिवृत्ति बादर गुणस्थान**- अनिवृत्ति अर्थात् समसमयवर्ती त्रैकालिक जीवों के अध्यवसायों की समानता एवं बादर अर्थात् बादर कषाय का उदय-ये दोनों अवस्थाएँ होने से नौवें गुणस्थान को अनिवृत्ति बादर गुणस्थान कहते हैं।

10. **सूक्ष्म संपराय गुणस्थान**- इस गुणस्थान में संपराय अर्थात् कषाय (लोभ) के सूक्ष्म खण्डों का ही उदय होने से इसका सूक्ष्म संपराय गुणस्थान ऐसा सार्थक नाम प्रसिद्ध है। जिस प्रकार धुले हुए गुलाबी रंग के कपड़े में लालिमा (सुर्खी) सूक्ष्म-झीनी-सी रह जाती है, उसी प्रकार इस गुणस्थानवर्ती जीव संज्वलन लोभ के सूक्ष्म खण्डों का वेदन करता है। इसलिए इसे सूक्ष्म संपराय गुणस्थान कहते हैं।

11. **उपशांत कषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान**- जिसके कषाय उपशांत हुए हैं उनके राग का सर्वथा अभाव है और जिनको छद्म (आवरण भूत ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म) लगे हुए हैं, वे जीव उपशांत कषाय वीतराग छद्मस्थ हैं और उनके स्वरूप विशेष को उपशांत कषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान कहते हैं। इसे उपशांत मोहनीय गुणस्थान भी कहते हैं।

शरद् ऋतु में होने वाले सरोवर के जल की तरह, मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणाम इस गुणस्थान वाले जीव के होते हैं। आशय यह है कि मोहनीय कर्म की सत्ता तो है परन्तु उदय नहीं होता है।

12. **क्षीण कषाय वीतराग छद्‌मस्थ गुणस्थान**- मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने के पश्चात् ही यह गुणस्थान प्राप्त होता है। इस गुणस्थानवर्ती जीव के भाव स्फटिक मणि के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल होते हैं, क्योंकि मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है, सत्ता भी नहीं रहती है जो मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय कर चुके हैं, किन्तु छद्‌म (ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय) अभी विद्यमान हैं, उनको क्षीण कषाय वीतराग छद्‌मस्थ कहते हैं और उनकी अवस्था विशेष को क्षीण कषाय वीतराग छद्‌मस्थ गुणस्थान कहते हैं। इसे क्षीण मोहनीय गुणस्थान भी कहते हैं।

13. **सयोगिकेवलि गुणस्थान**- जो चार घातिकर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय) का क्षय करके केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर चुके हैं, जो पदार्थ के जानने देखने में इंद्रिय आलोक आदि की अपेक्षा नहीं रखते हैं और योग (मन, वचन, काया) की प्रवृत्ति सहित हैं, उन्हें सयोगिकेवलि कहते हैं और उनकी अवस्था विशेष को सयोगिकेवलि गुणस्थान कहते हैं।

14. **▲अयोगिकेवलि गुणस्थान**- जो केवली भगवान योगों से रहित हैं वे अयोगिकेवलि कहलाते हैं, अर्थात् जब सयोगिकेवलि मन, वचन और काया के योगों का निरोध कर योग रहित शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं तब वे अयोगिकेवलि कहलाते हैं और उनकी अवस्था विशेष को अयोगिकेवलि गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान में 5 लघु अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण जितनी स्थिति तक रहकर-1. वेदनीय, 2. आयुष्य, 3. नाम और 4. गोत्र-इन चार अघाति कर्मों का क्षय करके अफुसमाण (दूसरे समय एवं अन्य पदार्थ का स्पर्श न करने वाली) गति से, एक समय की अविग्रह (बिना मोड़ वाली) गति से औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर को छोड़कर सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं। सिद्ध गति में जन्म नहीं, मरण नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्रय नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, गुरु नहीं, चेला नहीं, भूख नहीं, प्यास नहीं, ज्योति में ज्योति विराजमान है। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अव्याबाध सुख, क्षायिक चारित्र, अक्षय स्थिति, अमूर्तिक, अगुरुलघु, अनंत वीर्य सहित विराजमान होते हैं।

▲ समासयुक्त पद होने से 'गि' 'लि' में ह्रस्व इकार का प्रयोग समुचित है।

3. ● स्थिति द्वार

पहले गुण.	के तीन भंग हैं- 1. **अनादि अपर्यवसित** (अभव्य जीव की अपेक्षा) जिसकी आदि नहीं और अंत भी नहीं, 2. **अनादि सपर्यवसित** (भव्य जीव की अपेक्षा) जिसकी आदि नहीं किन्तु अन्त है, 3. **सादि सपर्यवसित** जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। (प्रतिपाती सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा) तीसरे भंग की स्थिति ज. अन्तर्मुहूर्त और उ. देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल की है।
दूसरे गुण. की	ज. एक समय उ. छः आवलिका की है।
तीसरे गुण. की	ज.उ. अंतर्मुहूर्त की है। (ज. से उ. बड़ी होती है)
❑चौथे गुण. की	ज. अंतर्मुहूर्त उ. 33 सागरोपम झाझेरी।
5वें और 13वें गुण.की	ज. अंतर्मुहूर्त उ. देशोन करोड़ पूर्व।
6ठे गुण. की	ज. एक समय उ. देशोन करोड़ पूर्व।
7,8,9,10,11वें गुण.	ज. एक समय उ. अंतर्मुहूर्त।
12वें गुण. की	अजघन्य अनुत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त।
14वें गुण. की	मध्यमरीति से पाँच लघु अक्षर (अ,इ,उ,ऋ,लृ) के उच्चारण करने में जितना काल लगे उतनी।

4. ▲ क्रिया द्वार

आगमों में एक साथ 25 क्रियाओं के रूप में उल्लेख उपलब्ध नहीं है। ठाणांगसूत्र के पाँचवें ठाणे में पाँच-पाँच क्रियाओं के रूप में अलग-अलग

● अमुक गुणस्थान में आत्मा का लगातार बने रहने का काल।

❑ पंच संग्रह, भाग-1, पृष्ठ 152 में चौथे गुणस्थान की स्थिति साधिक 33 सागरोपम बताई है, आगमों में इसका विरोध न होने से इसे ही प्रमाण स्वरूप माना गया है। क्षयोपशमिक सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल 66 सागरोपम झाझेरी का है पर उसमें गुणस्थान बदलते रहते हैं।

▲ कर्म बन्ध की कारणभूत चेष्टा को **क्रिया** कहते हैं।

वर्णन मिलता है अतः क्रिया द्वार में 25 क्रियाओं का उल्लेख न कर आरम्भिकी आदि 5 क्रियाओं के अनुसार उल्लेख किया जा रहा है। श्रीप्रज्ञापनासूत्र के 22वें क्रिया पद के अनुसार कौनसी क्रिया कौनसे गुण. में है इसका उल्लेख किया जा रहा है।

पाँच क्रियाओं के नाम- (1) आरम्भिकी, (2) पारिग्रहिकी, (3) मायाप्रत्यया, (4) मिथ्यादर्शन प्रत्यया, (5) अप्रत्याख्यान क्रिया।

1, 2●, 3 गुण.	5	पाँचों क्रियाएँ पायी जाती है।
4 गुण.	4	मिथ्यादर्शन प्रत्यया के अलावा
5 गुण.	3	मिथ्या. व अप्रत्याख्यान क्रिया को छोड़कर
6 गुण.	2	आरम्भिकी व मायाप्रत्यया क्रिया
7,8,9,10 गुण.	1	मायाप्रत्यया क्रिया
11,12,13,14 गुण.	-	इन पाँच में से कोई क्रिया नहीं लगती।

5. ❁ सत्ता द्वार

1 से 11 गुण.	8 ही कर्मों की सत्ता है।
12 गुण.	7 कर्मों की सत्ता है (मोहनीय कर्म को छोड़कर)
13-14 गुण.	4 कर्मों की सत्ता (4 अघाति कर्म वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र)।

6. ❖ बन्ध द्वार

1 से 7 गुण. (3रा छोड़कर)	7 या 8 कर्मों का बंध। जब 7 हो तो आयुकर्म का बंध नहीं होता।
3, 8, 9 गुण.	7 कर्मों का बन्ध (आयुकर्म को छोड़कर)
10 गुण.	6 कर्मों का बन्ध (मोहनीय व आयुकर्म छोड़कर)
11,12,13 गुण.	1 साता वेदनीय कर्म का बंध
14 गुण.	अबन्ध (कर्म बन्ध नहीं होता)।

● मिथ्यात्वभिमुख होने से एवं अनंतानुबन्धी कषाय का उदय होने से दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व की क्रिया लगना माना गया है।

❁ आत्मा के साथ कर्मों का लगा रहना **सत्ता** है।

❖ आत्मा के साथ कर्मों का क्षीर-नीर के समान एकमेक हो जाना **बन्ध** है।

7. ❑ उदय द्वार

1 से 10 गुण. तक	8 ही कर्मों का उदय है।
11 व 12 गुण.	7 कर्मों का उदय (मोहनीय कर्म को छोड़कर)
13 व 14 गुण.	4 अघाति कर्मों का उदय होता है।

8. ❁ उदीरणा द्वार

1 से 6 गुण. तक (3 को छोड़कर)	8 या 7 या 6◆ की उदीरणा होती है। 7 की हो तो आयु या वेदनीय कर्म की नहीं होती और 6 की हो तो आयु व वेदनीय दोनों की नहीं होती।
3 गुण. में	8 या 7 कर्मों की।
7, 8, 9 गुण.	6 कर्मों की। आयु और वेदनीय छोड़कर।
10 गुण.	6 या 5 की (6 की हो तो उपरोक्त दो छोड़कर और 5 हो तो मोहनीय को भी छोड़कर)
11 गुण.	5 कर्मों की (आयु, वेदनीय, मोहनीय छोड़कर)
12 गुण.	5 की तथा अन्तिम आवलिका में 2 की (नाम व गोत्र की)
13 गुण.	2 की (नाम व गोत्र की)।
14 गुण.	उदीरणा नहीं होती।

❑ अबाधाकाल पूर्ण होने पर कर्म का फल देना **उदय** कहलाता है।

❁ जिन कर्मदलिकों का उदयकाल न आया हो, उन्हें प्रयत्न विशेष से खींचकर उदय समय में लाना **उदीरणा** है।

◆ यद्यपि पंचसंग्रह में पहले आदि गुणस्थानों में 8 या 7 की तथा तीसरे गुण. में 8 कर्मों की उदीरणा कही है। तथापि श्री भ.सू.श. 21 के प्रमाण से वेदनीय की उदीरणा की भजना होने से पहले गुणस्थान आदि में 8 या 7 या 6 की व तीसरे गुण. में 8 या 7 की **उदीरणा** मानी है।

9. ❖ निर्जरा द्वार

1 से 10 गुण. तक	8 ही कर्मों की निर्जरा।
11 व 12 गुण.	7 कर्मों की (मोहनीय कर्म को छोड़कर)
13 व 14 गुण.	4 कर्मों की (अघाति कर्मों की वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र) निर्जरा होती है।

10. ● भाव द्वार

भाव पाँच होते हैं- 1. औदयिक भाव, 2. औपशमिक भाव, 3. क्षायिक भाव, 4. क्षयोपशमिक भाव और 5. पारिणामिक भाव।

1, 2, 3 गुण.	3 भाव	औदयिक, क्षयोपशमिक और पारिणामिक
4 से 7 गुण.	5 भाव	सभी पाँचों भाव।
8 से 11 गुण.	5 भाव	उपशम श्रेणी में सभी पाँचों भाव
8 से 12 गुण. (11वां छोड़कर)	4 भाव	क्षपक-श्रेणी में (औपशमिक को छोड़कर)
13 व 14 गुण.	3 भाव	औदयिक, क्षायिक व पारिणामिक भाव
सिद्ध भगवान में	2 भाव	क्षायिक व पारिणामिक।

1. कर्मों के उदय से होने वाले भाव को औदयिक कहते हैं जैसे नरक गति, क्रोध-कषाय आदि।
2. कर्मों के उपशम से होने वाले भाव औपशमिक है। जैसे-उपशम समकित, उपशम चारित्र।
3. कर्मों के क्षय से होने वाला भाव क्षायिक है- जैसे केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि।
4. कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला भाव क्षयोपशमिक है जैसे-आभिनिबोधिक ज्ञान आदि।
5. स्वभाव से ही रहने वाला भाव पारिणामिक है जैसे-जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

❖ आंशिक रूप से कर्मों का आत्मा से अलग होना **निर्जरा** है।

● जीव की अवस्था विशेष को **भाव** कहते हैं।

11. कारण द्वार

बन्ध के कारण पाँच होते हैं- 1. मिथ्यात्व, 2. अविरति, 3. प्रमाद, 4. कषाय और 5. योग।

1 गुण.	5	सभी पाँचों कारण
2, 3, 4 गुण.	4	(मिथ्यात्व को छोड़कर शेष चार❖)
5 व 6 गुण.	3	(मिथ्यात्व व अविरति को छोड़कर शेष)
7 से 10 गुण.	2	(कषाय और योग दो ही कारण)
11, 12, 13 गुण.	1	मात्र शुभयोग ही कारण होता है।
14 गुण.	0	कोई कारण नहीं है।

12. ● परीषह द्वार

बाईस परीषहों के नाम- 1. क्षुधा, 2. तृषा, 3. शीत, 4. उष्ण, 5. दंशमशक, 6. अचेल, 7. अरति, 8. स्त्री, 9. चर्या, 10. निषद्या (किसी स्थान में ठहरने पर भयजनक उपसर्ग आना), 11. शय्या, 12. आक्रोश, 13. वध, 14. याचना, 15. अलाभ, 16. रोग, 17. तृणस्पर्श, 18. जल्ल (मैल), 19. सत्कार-पुरस्कार, 20. प्रज्ञा, 21. अज्ञान, 22. दर्शन परीषह।

चार कर्मों के उदय से बाईस परीषह होते हैं। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से (बीसवां) प्रज्ञा और (इक्कीसवां) अज्ञान- ये दो परीषह होते हैं। वेदनीय कर्म के उदय से ग्यारह परीषह (पहला) क्षुधा, (दूसरा) तृषा, (तीसरा) शीत, (चौथा) उष्ण, (पाँचवां) दंशमशक, (नौवां) चर्या, (ग्यारहवां) शय्या, (तेरहवां) वध, (सोलहवां) रोग, (सतरहवां) तृणस्पर्श, (अठारहवां) जल्ल (मैल) होते हैं। मोहनीय कर्म के उदय से आठ परीषह होते हैं।

❖ मिथ्यात्व के कारण से बंधने वाली नरक गति आदि 16 कर्म प्रकृतियाँ दूसरे, तीसरे गुणस्थान में नहीं बंधाती है। अतः दूसरे, तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व को कारण मानना उपयुक्त नहीं है। क्रिया द्वार में दूसरे गुण. में अनंतानुबंधी के उदय के कारण तथा तीसरे गुण. में अज्ञान अवस्था के कारण मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया मानी गई है, किन्तु यहाँ बंध के कारणों का अधिकार है अतः मिथ्यात्व को कारण के रूप में ग्रहण नहीं किया गया।

● जिन्हें सहन किया जाता है, उन्हें परीषह कहते हैं अथवा मार्ग से न गिरने हेतु व निर्जरा के लिए जिन्हें सहन किया जाये, वे परीषह हैं।

दर्शन मोहनीय के उदय से एक (बाईसवां) दर्शन परीषह होता है और चारित्र-मोहनीय के उदय से सात (छठा) अचेल, (सातवां) अरति, (आठवां) स्त्री, (दसवां) निषद्या (किसी स्थान में ठहरने पर भय जनक उपसर्ग आना), (बारहवां) आक्रोश, (चौदहवां) याचना और (उन्नीसवां) सत्कार-पुरस्कार परीषह होते हैं। अन्तराय कर्म के उदय से एक (पन्द्रहवां) अलाभ परीषह होता है।

1 से 9 गुण.	22 परीषह▲	एक समय में एक जीव 20 परीषह ही वेदता है। शीत परीषह हो तो उष्ण नहीं होता और उष्ण हो तो शीत नहीं तथा चर्या परीषह हो तो निषद्या एवं शय्या नहीं होता और निषद्या या शय्या हो तो चर्या नहीं होता।
10,11,12 गुण.	14 परीषह	(8 मोहनीय के छोड़कर) जिनमें एक साथ अधिक से अधिक 12 परीषह वेदते हैं। शीत व उष्ण में से कोई एक तथा चर्या व शय्या में से कोई एक।
13 व 14 गुण.	11 परीषह	(वेदनीय कर्म से होने वाले) जिनमें से एक जीव अधिकाधिक 9 वेदते हैं। शीत व उष्ण में से कोई एक तथा चर्या व शय्या में से कोई एक वेदते हैं।

13. आत्मा द्वार

आठ आत्माओं के नाम- 1. द्रव्य आत्मा, 2. कषाय आत्मा, 3. योग आत्मा, 4. उपयोग आत्मा, 5. ज्ञान आत्मा, 6. दर्शन आत्मा, 7. चारित्र आत्मा और 8. वीर्य आत्मा।

▲ श्री भगवतीसूत्र, शतक 8, उ. 8 में सात कर्मों का बन्ध करने वाले जीवों के 22 परीषह बताए गए हैं। श्री भगवतीसूत्र, शतक 15 में गौशालक के भविष्य का वर्णन करते हुए बेमेल सन्नीवेश की ब्राह्मण पुत्री के लिए भी परीषह शब्द का प्रयोग है। इसी प्रकार श्री भगवतीसूत्र, शतक 2 उद्देशक 1 में भी मुनि बनने के पहले स्कन्दक हेतु परीषह शब्द का उल्लेख हुआ है।

1 व 3 गुण.	6	ज्ञान और चारित्र आत्मा के सिवाय 6 आत्मा।
2,4,5 गुण.	7	चारित्र आत्मा के सिवाय 7 आत्मा।
6 से 10 गुण.	8	सभी 8 आत्माएँ होती हैं।
11 से 13 गुण.	7	कषाय आत्मा के सिवाय 7 आत्मा।
14 गुण.	6	कषाय व योग आत्मा को छोड़कर
सिद्ध भगवान	4	द्रव्य, उपयोग, ज्ञान एवं दर्शन आत्मा

14. जीव भेद द्वार

1 गुण.	14	सभी चौदह भेद पाए जाते हैं।
2 गुण.	6	बेइ., तेइ., चउ., असंज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त व पर्याप्त।
3 गुण.	1	संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त।
4 गुण.	2	संज्ञी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त और पर्याप्त।
5 से 14 गुण.	1	संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त।

15. गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने-अपने गुण से संयुक्त होता है।

1 से 4 गुण.	1. असंयत, 2. अप्रत्याख्यानी, 3. अविरत, 4. असंवृत, 5. अपण्डित, 6. अजागृत, 7. अधर्मी, 8. अधर्म-व्यवसायी-ये आठ बोल पाये जाते हैं।
5 गुण.	1. संयता संयत, 2. प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी, 3. विरताविरत, 4. संवृतासंवृत, 5. बाल पण्डित, 6. सुप्त जागृत, 7. धर्मा-धर्मी, 8. धर्मा-धर्म व्यवसायी।
6 से 14 गुण.	1. संयत, 2. प्रत्याख्यानी, 3. विरत, 4. संवृत, 5. पण्डित, 6. जागृत, 7. धर्मी, 8. धर्म व्यवसायी।

दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार-

गत्यन्तर जाते मार्ग में गुणस्थान **तीन**-पहला, दूसरा और चौथा।

अमर गुण. **तीन**- 3, 12, 13

अप्रतिपाति गुण. **तीन**- 12, 13, 14

तीर्थंकर नाम कर्म के बंधक गुण. **पाँच**- 4, 5, 6, 7, 8

तीर्थंकर के लिए अस्पृश्य गुण. **पाँच**- 1, 2, 3, 5, 11

शाश्वत गुण. **छः**- 1, 4, 5, 6, 7, 13

अनाहारक गुण. **पाँच**- 1, 2, 4, 13❋, 14

मोक्ष प्राप्त करने वाला उस भव में कम से कम **आठ** गुण. अवश्य प्राप्त करता है- 4, 7, 8, 9, 10, 12, 13, 14 और संसार अवस्थान काल में कम से कम प्रथम गुण. सहित **नौ** गुण. प्राप्त करता है।

16. योग द्वार

1, 2 व 4 गुण.	13 योग	आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर
3 गुण.	10 योग	उपरोक्त 13 में से औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र, कार्मण काययोग छोड़कर
5 गुण.	12 योग	आहारक, आहारक मिश्र और कार्मण काययोग छोड़कर
6 गुण.	14 योग	कार्मण काययोग को छोड़कर
◆7 से 12 गुण.	9 योग	4 मनोयोग, 4 वचनयोग और एक औदारिक
13 गुण.	7 योग	सत्य मनोयोग, व्यवहार मनोयोग, सत्य वचनयोग, व्यवहार वचनयोग, औदारिक, औदारिक मिश्र, कार्मण।
14वें गुण.	-	योग नहीं होता।

❋ 1, 2, 4 विग्रह गति एवं 13 केवली समुद्घात की अपेक्षा।

◆ प्रज्ञापनासूत्र के 21वें पद में अप्रमतावस्था में आहारक शरीर नहीं बताया है अत: 7वें गुण. में आहारक व वैक्रिय काययोग नहीं मानकर 9 योग मानना ही उचित लगता है। मतान्तर से पंचसंग्रह के प्रथम द्वार योगोपयोग मार्गणा की सत्रहवीं गाथा के अनुसार सातवें गुणस्थान में वैक्रिय एवं आहारक योग मानने से कुल ग्यारह योग भी माने जाते हैं।

17. उपयोग द्वार

1 व 3 गुण.	6	तीन अज्ञान (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंग ज्ञान), तीन दर्शन (चक्षु, अचक्षु, अवधि)
2,4,5 गुण.	6	तीन ज्ञान व तीन दर्शन
6 से 12 गुण. (10वां छोड़कर)	7	4 ज्ञान, 3 दर्शन
10 गुण.	4	मति. श्रुत. अवधि व मन:पर्यज्ञान
13 व 14 गुण.	2	केवलज्ञान व केवलदर्शन।

18. लेश्या द्वार

1 से 6 गुण.	6	छहों लेश्याएँ पायी जाती है।
7 गुण.	3	तेजो, पद्म और शुक्ल
8 से 12 गुण.	1	शुक्ल लेश्या।
13 गुण.	1	परम शुक्ल लेश्या।
14 गुण.	-	अलेशी (लेश्या नहीं होती)।

19. हेतु द्वार

हेतु 57 होते हैं- 5 मिथ्यात्व, 25 कषाय, 15 योग और 12 अव्रत (6 काय, 5 इन्द्रिय, 1 मन)।

1 गुण.	55	आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर
2 गुण.	50	(55-5) पाँच मिथ्यात्व को छोड़कर
3 गुण.	43	(50-7) अनन्तानुबन्धी चतुष्क, औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण काय योग को छोड़कर
4 गुण.	46	(43+3) पूर्वोक्त 43 के साथ ही औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण काययोग जोड़कर
5 गुण.	40	(46-6) अप्रत्याख्यानी चतुष्क, त्रस अविरति व कार्मण काययोग छोड़कर
6 गुण.	27	(14 योग + 13 कषाय)

7-8 गुण.	22	27 में से 5 (औदारिक मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र, आहारक और आहारक मिश्र) को छोड़कर
9 गुण.	16	22 में से 6 (हास्यादिक) छोड़कर अथवा (7 कषाय + 9 योग)
10 गुण.	10	9 योग+संज्वलन लोभ
11-12 गुण.	9	4 मन के, 4 वचन के और एक औदारिक
13 गुण.	7	सत्य मनयोग, व्यवहार मनयोग, सत्य भाषा, व्यवहार भाषा, औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण।
14 गुण.	-	कोई भी हेतु नहीं होता।❖

20. मार्गणा द्वार

यहां मार्गणा का तात्पर्य आने व जाने के मार्ग से है।●

1 गुण.	आगति	5	पहले गुण. में जीव 2, 3, 4, 5, 6- इन पाँच गुण. से आ सकता है।
	गति	5	पहले गुण. से जीव 3, 4, 5, 6, 7 - इन पाँच गुण. में जा सकता है।▲
2 गुण.	आगति	3	4, 5, 6 गुण.
	गति	1	पहला गुणस्थान

❖ बन्ध के हेतु बतलाते हुए भिन्न-2 अपेक्षाओं से ग्रंथकारों ने दो, चार, पाँच अथवा सत्तावन हेतु बताए हैं। ग्यारहवें कारण द्वार में पाँच की अपेक्षा कथन किया गया है तथा इस उन्नीसवें हेतु द्वार में सत्तावन हेतुओं की अपेक्षा कथन किया गया है।

● जैसे-पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा में आगति मार्गणा 5 यानि पहले गुणस्थान में जीव 5 गुणस्थानों (2, 3, 4, 5, 6) से आ सकता है और गति मार्गणा 5 यानि पहले गुणस्थान का जीव 5 गुणस्थानों (3, 4, 5, 6, 7) में जा सकता है

▲ उपशमना करण (पंचसंग्रह) की 28वीं गाथा की टीका में पहले से सीधा छठे गुणस्थान में जाना बताया है।

3 गुण.	आगति 1●	1 गुण.
	गति 2✣	गिरे▲ तो 1, चढ़े❑ तो 4 गुण.
4 गुण.	आगति 9	1 से 11 गुण. (2 व 4 गुण. को छोड़कर)
	गति 5	चढ़े तो 5, 6, 7❊ गिरे तो 2, 1 गुण.
5 गुण.	आगति 3	1, 4, 6 गुण.
	गति 5	चढ़े तो 6, 7, गिरे तो 4, 2, 1 गुण.
6 गुण.	आगति 4	1, 4, 5, 7 गुण.
	गति 5	चढ़े तो 7, गिरे तो 5, 4, 2, 1, गुण.
7 गुण.	आगति 5	1, 4, 5, 6, 8 गुण.
	गति 3	चढ़े तो 8, गिरे तो 6, काल करे तो 4 गुण.
8 गुण.	आगति 2	7, 9 गुण.
	गति 3	चढ़े तो 9, गिरे तो 7, काल करे तो 4 गुण.
9 गुण.	आगति 2	8, 10 गुण.
	गति 3	चढ़े तो 10, गिरे तो 8, काल करे तो 4 गुण.

● यद्यपि कार्मग्रन्थिक कथनानुसार सम्यग्दृष्टि जीव तीसरे गुण. में जाता है परन्तु सिद्धान्तानुसार नहीं जाता है-

मिच्छत्ता संकंती अविरुद्धा होई सम्ममी सेसु।
मीसाऊ वा दोसुं सम्मा मिच्छं न उण मीसं।।

-वृहत्कल्प भाष्य गाथा-114

इसी कारण से सिद्धान्तमत में प्रथम गुण. का उ. अंतर 66 सागर. झाझेरी माना है।

✣ **सम्यग्मिथ्या दृष्टिः सम्यक्त्वं संयमं च युगपन्न प्रतिपद्यते तथा विशुद्धेर-भावात्** पं. सं. भाग-8 गाथा-72 की मलयगिरि टीका पत्रंक-1123 ।

सम्यग् मिथ्यादृष्टि जीव के तथारूप विशुद्धि का अभाव होने से सम्यक्त्व एवं संयम को एक साथ प्राप्त नहीं कर सकता। जिस प्रसंग में यह वर्णन आया है वहां संयम से देशसंयम एवं सर्वसंयम दोनों को स्वीकार किया गया है। अतः तीसरे गुण. के गति मार्गणा में सिर्फ चौथा गुण. ही ग्रहण किया गया है।

▲ परिणामों की मलीनता से ऊपर के गुण. से नीचे के गुण. में आना।

❑ परिणामों की विशुद्धि से आगे के गुण. में बढ़ना।

❊ **उवसमदिट्ठिअन्तकरणे ठिओ कोई देस विरईयंपि लभेइ, कोई पमत्तापमत्त भावंपि** -शतक चूर्णी।

10 गुण.	आगति	2	9, 11 गुण.
	गति	4	चढ़े तो 11-12, गिरे तो 9, काल करे तो 4 गुण.
11 गुण.	आगति	1	10 गुण.
	गति	2	गिरे तो 10, काल करे तो 4 गुण.
12 गुण.	आगति	1	10 गुण.
	गति	1	13 गुण.
13 गुण.	आगति	1	12 गुण.
	गति	1	14 गुण.
14 गुण.	आगति	1	13 गुण.
	गति	1	मोक्ष।

21. ❖ध्यान द्वार

1, 2, 3 गुण.	2	आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान
4-5 गुण.	3	आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान और धर्मध्यान
6 गुण.	2	आर्त्तध्यान और धर्मध्यान
7 गुण.	1	धर्मध्यान
8 से 12 गुण.	2	धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान
13-14 गुण.	1	शुक्लध्यान

22. दण्डक द्वार

1 गुण.	24	दण्डक
2 गुण.	19	5 स्थावर को छोड़कर
3-4 गुण.	16	24 में से 5 स्थावर व 3 विकलेन्द्रिय छोड़कर
5 गुण.	2	तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य
6 से 14 गुण.	1	मनुष्य का एक दण्डक

टिप्पण:- गुणस्थानों में ध्यान के विषय में विभिन्न मान्यताएँ प्राप्त होती हैं। इस थोकड़े में 'जिणधम्मो' में आगत वर्णन को मान्य किया गया है।

❖ चित्त की एकाग्रता को **ध्यान** कहते हैं।

23. निमित्त द्वार

1 गुण.	मिथ्यात्व मोहनीय का उदय निमित्त है।
2 गुण.	दर्शन त्रिक का उपशम एवं अनन्तानुबंधी चतुष्क का उदय निमित्त है।
3 गुण.	मिश्र मोहनीय का उदय निमित्त है।
4 गुण.	दर्शन त्रिक एवं अनन्तानुबंधी चतुष्क का क्षय, उपशम या क्षयोपशम निमित्त है।
5 गुण.	अप्रत्याख्यान चतुष्क का क्षयोपशम निमित्त है।
6 गुण.	प्रत्याख्यान चतुष्क एवं संज्वलन चतुष्क का क्षयोपशम निमित्त है।
7 व 8 गुण.	संज्वलन चतुष्क का क्षयोपशम निमित्त है।
9 गुण.	प्रारंभ में संज्वलन चतुष्क का क्षयोपशम एवं बाद में चारित्र मोहनीय की कुछ प्रकृतियों का क्षय या उपशम निमित्त है।
10 गुण.	सूक्ष्म संज्वलन लोभ का उदय एवं चारित्र मोहनीय की शेष प्रकृतियों का उपशम या क्षय निमित्त है।
11 गुण.	चारित्र मोहनीय का पूर्ण उपशम निमित्त है।
12 गुण.	चारित्र मोहनीय का पूर्ण क्षय निमित्त है।
13 गुण.	ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय एवं अंतराय कर्म का क्षय तथा योग का सद्भाव निमित्त होता है।
14 गुण.	योग का अभाव निमित्त है।

24. चारित्र द्वार

1-4 गुण.	-	कोई चारित्र नहीं।
5 गुण.	-	देश चारित्र
6, 7 गुण.	3	सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि चारित्र।
8, 9 गुण.	2	सामायिक व छेदोपस्थापनीय चारित्र।
10 गुण.	1	सूक्ष्म संपराय चारित्र।
11 से 14 गुण.	1	यथाख्यात चारित्र होता है।

25. ❖आकर्ष द्वार

पहले गुण. का तीसरा भंग (सा. सप.) व 3, 4, 5 गुण.	एक भव की अपेक्षा अनेक भव की अपेक्षा	ज. 1 बार ज. 2 बार	उ. पृ. हजार बार उ. असं. बार
2 गुण.	एक भव की अपेक्षा अनेक भव की अपेक्षा	ज. 1 बार ज. 2 बार	उ.अनेक बार उ. असं. बार
6-7 गुण.	एक भव की अपेक्षा अनेक भव की अपेक्षा	ज.1 बार ज. 2 बार	उ. पृ. सौ बार उ. पृ. हजार बार
8,9,10 गुण.	एक भव की अपेक्षा अनेक भव की अपेक्षा	ज. 1 बार ज. 2 बार	उ. 4 बार उ. 9 बार
11 गुण.	एक भव की अपेक्षा अनेक भव की अपेक्षा	ज. 1 बार ज. 2 बार	उ. 2 बार उ. 4 बार
12,13,14 गुण.	एक भव की अपेक्षा 1 बार अनेक भवों में भी 1 ही बार प्राप्त हो सकता है।		

26. समकित द्वार

4 से 14 गुण.	क्षायिक सम्यक्त्व
4 से 11 गुण.	उपशम सम्यक्त्व
4 से 7 गुण.	क्षयोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व
2 गुण.	सास्वादन सम्यक्त्व
1 व 3 गुण.	कोई सम्यक्त्व नहीं होता है।

❖ जीव एक भव की अपेक्षा और अनेक भवों की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान को जघन्य और उत्कृष्ट कितनी बार स्पर्श सकता है, उस स्पर्श करने की संख्या विशेष को **आकर्ष** कहते हैं।

सांकेतिक शब्द : ज.-जघन्य, **उ.**-उत्कृष्ट, **पृ.**-पृथक्त्व, **असं.**-असंख्यात, **गुण.**-गुणस्थान, **सा.**-सादि, **सप.**-सपर्यवसित

27. अन्तर द्वार

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं- 1. अनादि- अपर्यवसित (सदा से मिथ्यादृष्टि है और सदा रहेंगे), 2. अनादि सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि नहीं, किन्तु अंत है), 3. सादि सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि भी है और अंत भी है)।

1 गुण. के तीसरे भंग का अन्तर	ज. अन्तर्मुहूर्त और उ. 66 सागरोपम झाझेरी❖ है।
2 गुण. का अंतर (श्रीजीवाजीवा-भिगमसूत्र द्वितीय भाग सर्वजीव चतुर्विध वक्तव्यता से)	ज. पल्योपम का असंख्यातवां भाग● उ. देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल।
3 से 11गुण.(4गुण.छोड़कर) का अंतर	ज. अंतर्मुहूर्त और उ. देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल।
4 गुण. का अंतर	ज. 1 समय उ. देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तनकाल।❑
12, 13, 14 गुण. का	अंतर नहीं है।

❖ **टिप्पण**-श्रीजीवाजीवाभिगम सूत्र में सादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि का अन्तर 66 सागरोपम झाझेरी कहा है। तद्नुसार थोकड़े में उल्लेख किया है। कर्म ग्रंथों के मत से मिथ्यादृष्टि का अंतर 132 सागरोपम झाझेरी कहा गया है। उनके अनुसार 66 सागरोपम झाझेरी सम्यग् दृष्टि रहकर जीव सम्यग् मिथ्यादृष्टि (मिश्र) को प्राप्त करके पुन: 66 सागरोपम झाझेरी सम्यग्दृष्टि रहकर फिर मिथ्यादृष्टि बनता है। तद्नुसार मिथ्यादृष्टि का अंतर 132 सागरोपम झाझेरी माना गया है।

● पल्योपम के असं. भाग का अंतर प्रथमोपशम सम्यक्त्व से गिरकर दूसरे गुण. में जाने वाले जीव की अपेक्षा से है। कम्मपयडि एवं पंचसंग्रह के मतानुसार अनंतानुबंधी की विसंयोजना करने वाला ही उपशम श्रेणी (द्वितीयोपशम) का आरोहण करता है। अत: उक्त ग्रंथों के अनुसार द्वितीयोपशम वाला गिरकर मिथ्यात्व में जाते समय द्वितीय गुणस्थान का स्पर्श नहीं करेगा।

जिन आचार्यों के मत से अनन्तानुबंधी की उपशमना करके भी उपशम श्रेणी में आरोहण संभव है। उनके मतानुसार दूसरे गुणस्थान का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त का समझना चाहिए।

❑ 4 गुण. का ज. अंतर 4 से 6 गुण. में गया एक समय रहकर काल कर गया।

28. अल्प बहुत्व द्वार (जीव प्रमाण)

सबसे कम 11वें गुणस्थानवर्ती (प्रति पद्यमान की अपेक्षा 54)

उससे 12वें और 14वें गुण. वाले परस्पर तुल्य सं. गुणा (प्रति पद्यमान❖ की अपेक्षा 108)

उससे 8वें, 9वें, 10वें गुणस्थान में परस्पर तुल्य विशेषाधिक (प्रति पद्यमान की अपेक्षा 162)

इससे 13वें गुण. वाले जीव सं. गुणा (पृथक्त्व करोड़)।

उससे 7वें गुण. सं. गुणा पृथक्त्व सौ करोड़[1]।

उनसे 6ठे गुण. वाले सं. गुणा। ये ज. और उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार करोड़ पाये जाते हैं।

उससे 5वें गुण. वाले असं. गुणा[2]।

उससे 2रे गुण. वाले असं. गुणा[3]।

उससे 3रे गुण. वाले असं. गुणा[4]।

❖ किसी विवक्षित समय में उस गुणस्थान को प्राप्त करने वाले।

1. लोक प्रकाश ग्रंथ श्लोक 1234 के अनुसार 7वें गुण की संख्या पृथक्त्व सौ करोड़ प्रकट होती है।
2. क्योंकि असंख्यात गर्भज तिर्यंच भी इस पाँचवें गुणस्थान में है।
3. दूसरे गुणस्थान वाले पाँचवें गुणस्थान से असंख्यात इस कारण है कि पाँचवां गुणस्थान केवल मनुष्य और तिर्यंचों को होता है, किन्तु दूसरा गुणस्थान विकलेन्द्रियों का भी होता है, परन्तु पाँचवां नहीं हो सकता।
4. यद्यपि दूसरा और तीसरा गुणस्थान चारों गतियों में पाया जाता है, परन्तु दूसरे की अपेक्षा तीसरे की स्थिति संख्यात गुणी है। इस कारण तीसरे गुणस्थान वाले जीव दूसरे से असंख्यात गुणा है। दूसरे से पाँचवें तक प्रत्येक गुणस्थान में वर्तमान जीव उ. से क्षेत्र पल्यो. के असं. भाग में विद्यमान प्रदेशराशि प्रमाण है।

उससे 4 गुण. वाले असं. गुणा[5]।

उससे 1 गुण. वाले अनंत गुणा[6]।

"सेवं भंते! सेवं भंते! गौतम पूछे सही।
वीरजीरा वचन में संदेह कोई नहीं॥"

---

5. तीसरे गुणस्थान की अपेक्षा चौथे की स्थिति बहुत अधिक है और यह भी चारों गति में पाया जाता है। अत: चौथे गुणस्थान वाले जीव उनकी अपेक्षा अधिक है।
   यहाँ एक बोल और भी कह सकते हैं-चौथे गुणस्थान से सिद्ध भगवंत अनंतगुणा हैं फिर सिद्धों से पहले गुणस्थान वाले अनंतगुणा होते हैं।
6. साधारण वनस्पतिकाय के जीव, सभी मिथ्यादृष्टि हैं, अतएव पहले गुणस्थान वाले, चौथे गुणस्थान वालों से अंनतगुणा हैं। ये अनंत लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं।

नोट : गुणस्थान स्वरूप में १, २, ३, ४ आदि गुणस्थानों के विवरण में ४ गुण., ५ गुण. आदि नहीं समझकर चौथा, पाँचवां आदि समझना चाहिए।

गुण.	स्थिति	क्रिया	सत्ता	बन्ध	उदय	उदीरणा	निर्जरा	भाव	कारण	परीषह	आत्मा	जीव के भेद	गुण.	योग	उपयोग	लेश्या	हेतू	मार्गणा	
																		आगति	गति
1.	तीसरे भंग की अपेक्षा ज. उ. अंत. देशोन अर्द्ध. पुद्‌गल परावर्तन	5	8	7/8	8	7/8/6	8	3	5	22	6	14	सभी गुणस्थान अपने-अपने गुण से संयुक्त है	13	6 (अ.द.)	6	55	5(2,3,4,5,6)	5 (3,4,5,6,7)
2.	एक समय छः आवलिका	5	8	7/8	8	7/8/6	8	3	4	22	7	6		13	6ज्ञा.द.	6	50	3 (4,5,6)	1 (1)
3.	अंत. अंतर्मुहूर्त	5	8	7	8	7/8	8	3	4	22	6	1		10	6अ.द.	6	43	1 (1)	2(1,4)
4.	अंत. 33 सा. झाझेरी	4	8	7/8	8	7/8/6	8	5	4	22	7	2		13	6ज्ञा.द.	6	46	9(1,3,5से11)	5(5,6,7,2,1)
5.	अंत. देशोनक्रोड़पूर्व	3	8	7/8	8	7/8/6	8	5	3	22	7	1		12	6ज्ञा.द.	6	40	3(1,4,6)	5 (6,7,4,2,1)
6.	एक समय --''--	2	8	7/8	8	7/8/6	8	5	3	22	8	1		14	7	6	27	4(1,4,5,7)	5(7,5,4,2,1)
7.	--''-- अंतर्मुहूर्त	1	8	7/8	8	6	8	5	2	22	8	1		9	7	3	22	5(1,4,5,6,8)	3(8,6,4)
8.	--''-- --''--	1	8	7	8	6	8	5/4	2	22	8	1		9	7	1	22	2 (7,9)	3(9,7,4)
9.	--''-- --''--	1	8	7	8	6	8	5/4	2	22	8	1		9	7	1	16	2 (8,10)	3(10,8,4)
10.	--''-- --''--	1	8	6	8	6/5	8	5/4	2	14	8	1		9	4	1	10	2 (9,11)	4(11,12,9,4)
11.	--''-- --''--	x	8	1	7	5	7	5/4	1	14	7	1		9	7	1	9	1 (10)	2 (10,4)
12.	अंत. --''--	x	7	1	7	5/2	7	4	1	14	7	1		9	7	1	9	1 (10)	1 (13)
13.	--''-- देशोनक्रोड़पूर्व	x	4	1	4	2	4	3	1	11	7	1		7	2	1	7	1 (12)	1 (14)
14.	अंत. अंत.	x	4	x	4	x	4	3	x	11	6	1		x	2	x	x	1 (13)	1 (मोक्ष)
सि. भ.	सादि अनंत एक की अपेक्षा, अनादि अनंत अनेक की अपेक्षा	x	x	x	x	x	x	2	x	x	4	x		x	2	x	x	1 (14)	x

गुण.	ध्यान	दण्डक	निमित्त	चारित्र	आकर्ष: एक भव की अपेक्षा ज.	आकर्ष: एक भव की अपेक्षा उ.	आकर्ष: अनेक भव की अपेक्षा ज.	आकर्ष: अनेक भव की अपेक्षा उ.	समकित	अंतर ज.	अंतर उ.	अल्पबहुत्व•
					सादि सपर्यवसित (तीसरे भंग की अपेक्षा)					तीसरे भंग की अपेक्षा		
1	2	24	दर्शन मो.	x	1 बार	पृ. हजार बार	2 बार	असं. बार	x	अंतर्मुहूर्त	66सा. झा.	12 अनंतगुणा
2	2	19	चारित्र मो.	x	1 बार	अनेक ''	2 बार	असं. बार	सास्वादन	पल्यो. का असं. भाग	दे. अर्द्ध पु.	8 असं. गुणा
3	2	16	दर्शन मो.	x	1 बार	पृ. हजार ''	2 बार	असं. बार	x	अंतर्मुहूर्त	--''--	9 असं. गुणा
4	3	16	--''--	x	1 बार	पृ. हजार ''	2 बार	--''--	क्षायिक/उप./क्षयो.	1 समय	--''--	10 असं. गुणा
5	3	2	चारित्र मो.	देश चा.	1 बार	पृ. हजार ''	2 बार	असं. बार	--''--	अंतर्मुहूर्त	--''--	7 असंख्यात गुणा
6	2	1	--''--	3	1 बार	पृ. सौ ''	2 बार	पृ. हजार ''	--''--	--''--	--''--	6 संख्यात गुणा
7	1	1	--''--	3	1 बार	--''-- ''	2 बार	--''-- ''	--''--	--''--	--''--	5 संख्यात गुणा
8	2	1	--''--	2	1 बार	चार बार	2 बार	9 बार	उप./क्षायिक	--''--	--''--	3 संख्यात गुणा
9	2	1	--''--	2	1 बार	--''-- ''	2 बार	9 बार	--''--	--''--	--''--	3 संख्यात गुणा
10	2	1	--''--	1	1 बार	--''-- ''	2 बार	9 बार	--''--	--''--	--''--	3 संख्यात गुणा
11	2	1	--''--	1	1 बार	दो बार	2 बार	4 बार	--''--	--''--	--''--	1 सबसे थोड़े
12	2	1	--''--	1	1 बार				क्षायिक	x	x	2 संख्यात गुणा
13	1	1	योग	1	--''--				--''--	x	x	4 संख्यात गुणा
14	1	1	योग	1	--''--				--''--	x	x	2 संख्यात गुणा
सि. भ.	x	x	8 कर्मों का क्षय	x	x	--''--			--''--	x	x	11 अनंतगुणा

•अल्पबहुत्व में जो नम्बर दिया गया वह उस क्रम से जानने की अपेक्षा से। तथा 12, 14 गुण परस्पर तुल्य सं. गुणा 8,9,10 गुण सं. गुणा परस्पर तुल्य समझना।

कथा विभाग

1. उत्कृष्ट भोगी उत्कृष्ट योगी

धन्ना शालिभद्र

शालिभद्र का पूर्व जन्म

राजगृह नगर के निकट शालिग्रम में 'धन्या' नाम की स्त्री-कहीं अन्य ग्राम से आकर रह रही थी। उसके 'संगमक' नाम का एक पुत्र था। इसके अतिरिक्त उसका समस्त परिवार नष्ट हो चुका था। वह लोगों के यहाँ मजदूरी करती थी और संगमक दूसरों के बछड़े (गौ-वत्स) चराया करता था। किसी पर्वोत्सव के दिन सभी लोगों के यहाँ खीर बनाई गई थी। संगमक ने लोगों को खीर खाते देखा, तो उसके मन में भी खीर खाने की लालसा जगी। उसने घर आकर माता से खीर बनाने को कहा। धन्या ने अपनी दरिद्र दशा बताकर पुत्र को समझाया, किन्तु बालक हठ पकड़ बैठा। धन्या अपनी पूर्व की सम्पन्न स्थिति और वर्तमान दुर्दशा का विचारकर रोने लगी। आसपास की महिलाओं ने धन्या के रुदन का कारण पूछा। धन्या ने कहा- ''मेरा बेटा खीर माँगता है। मैं दुर्भागिनी हूँ। मैं भले घर की सम्पन्न स्त्री थी, परन्तु दुर्भाग्य से मेरी यह दशा हो गई। रूखा-सूखा खाकर पेट भरना भी कठिन हो गया, तब इसे खीर कहाँ से खिलाऊँ? यह मानता ही नहीं है। अपनी दुर्दशा का विचारकर मुझे रोना आ गया।'' पड़ोसिन महिलाओं के मन में करुणा उत्पन्न हुई। उन्होंने दूध आदि सामग्री अपने घरों से लाकर धन्या को दी। धन्या ने खीर पकाई और एक थाली में डालकर पुत्र को दी। पुत्र को खीर देकर धन्या दूसरे काम में लग गई। इसी समय एक तपस्वी संत ने मासखमण के पारणे के लिए अपने अभिग्रह के अनुसार दरिद्र दिखाई देने वाली धन्या की झोंपड़ी में प्रवेश किया। संगमक थाली की खीर को ठण्डी होने तक रुका हुआ था। संगमक ने तपस्वी महात्मा को देखा, तो उसके हृदय में शुभभावों का उदय हुआ। उसने सोचा- ''धन्य भाग मेरे! ऐसे तपस्वी महात्मा मुझ दरिद्र के घर पधारे। मेरे पास उन्हें प्रतिलाभने (देने) के लिए खीर है।'' इस प्रकार विचार करते हुए उसने मुनिराज के पात्र में थाली ऊँडेलकर सारी खीर बहरा दी। तपस्वी संत के लौटने के बाद धन्या घर में

आई। उसने देखा-थाली में खीर नहीं है। उसने फिर दूसरी बार खीर परोसी। संगमक ने रुचि पूर्वक आकण्ठ खीर खाई। उसे अजीर्ण होकर रोगातंक हुआ। रोग उग्रतम हुआ, परन्तु संगमक के मन में तो तपस्वी संत और उन्हें दिये हुए दान की प्रसन्नता रम रही थी। उन्हीं विचारों में संगमक ने आयु पूर्णकर देह छोड़ी।

शालिभद्र- संगमक का जीव राजगृह नगर में 'गोभद्र' सेठ की 'भद्रा' भार्या के गर्भ में उत्पन्न हुआ। भद्रा ने स्वप्न में पका हुआ शालि क्षेत्र (चावल का खेत) देखा। उसने अपने पति को स्वप्न सुनाया। पति ने कहा- "तुम्हारे एक भाग्यशाली पुत्र होगा।" भद्रा को 'दान करने' का दोहद हुआ। गोभद्र सेठ ने उसका दोहद पूर्ण किया। गर्भकाल पूर्ण होने पर एक सुंदर पुत्र का जन्म हुआ। स्वप्न के अनुसार माता-पिता ने पुत्र का नाम 'शालिभद्र' रखा। उसका पालन-पोषण राजसी ढंग से हुआ। उसे योग्य वय में विद्याकला में निपुण बनाया और अपने समान समृद्धिशाली श्रेष्ठियों की बत्तीस सुंदर सुशील कन्याओं के साथ लग्न कर दिये। शालिभद्र अपनी बत्तीस प्रियतमाओं के साथ भव्य भवन में उत्तम भोग भोगता हुआ अपने पुण्य-फल का रसास्वादन कर रहा था। वह रागरंग में इतना लीन हो गया कि उसे सूर्य उदय-अस्त और दिन-रात का भान ही नहीं रहता था। भगवान् महावीर प्रभु का उपदेश सुनकर गोभद्र सेठ विरक्त हुए और भगवान् के पास दीक्षित होकर तप-संयम का पालनकर स्वर्गवासी हुए। व्यापार-व्यवसाय भद्रा माता ही देखने लगी। शालिभद्र को इस ओर देखने की आवश्यकता ही नहीं रही। गोभद्र देव ने अवधिज्ञान से अपने पुत्र को देखा। पुत्र-वात्सल्य एवं पूर्व पुण्य से आकर्षित होकर देव अपने पुत्र और पुत्र-वधुओं के लिए प्रतिदिन दिव्य-वस्त्रालंकार भेजने लगा। शालिभद्र के लिए तो इस मनुष्य भव में केवल भोग भोगने का ही कार्य था।

एक बार राजगृह में कुछ विदेशी व्यापारी रत्नकम्बल लेकर आये। उनका मूल्य बहुत अधिक होने के कारण महाराज श्रेणिक ने भी वे रत्नकम्बल नहीं खरीदे। विदेशी व्यापारी निराश होकर जा रहे थे कि भद्रा सेठानी के महलों की तरफ आ गये। भद्रा के पास अपार स्वर्ण-भण्डार भरे थे, उसने विदेशी व्यापारियों को मुँह मांगा मूल्य देकर रत्नकम्बल खरीद लिए। कम्बल सोलह ही थे, अत: उनके दो-दो टुकड़े करके बत्तीसों

पुत्र-वधुओं को दे दिये।

महारानी चेलणा ने राजा श्रेणिक से एक रत्नकम्बल की माँग की। राजा ने व्यापारियों को बुलाया तो पता चला कि सभी कम्बल सेठानी भद्रा ने खरीद लिए हैं। राजा ने सेठानी के पास कहलाया ''एक कम्बल हमें चाहिए, जो भी मूल्य हो वह लेकर कम्बल दे दें।'' भद्रा ने विनयपूर्वक वापस सूचित किया कि ''वे रत्नकम्बल तो खण्डित हो गए। मेरी पुत्र-वधुओं ने उनके पाद-प्रोच्छन (पैर पोंछने के रूमाल) बना लिए हैं, अत: अब मैं क्षमा चाहती हूँ।''

राजा श्रेणिक को यह जानकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि नगर में उससे भी अधिक श्रीमन्त और उदार लोग बसते हैं, जिनके वैभव और भोग-साधनों की थाह पाना कठिन है। राजा को जिज्ञासा हुई कि आखिर उसका पुत्र कैसा है, जिसकी पत्नियाँ देव-दुर्लभ रत्नकम्बल के पाद प्रोच्छन बनाकर फेंक देती हैं। राजा ने भद्रा को कहलाया- ''महाराज आपके पुत्र शालिभद्र को देखना चाहते हैं।''

भद्रा असमंजस में पड़ गई। शालिभद्र आज तक सातवीं मंजिल से नीचे भी नहीं उतरा, उसे कुछ भी लोक-व्यवहार का पता नहीं। राजा कहीं अप्रसन्न न हो जायें, अत: वह स्वयं राज-दरबार में उपस्थित हुई और महाराज से प्रार्थना की - ''महाराज! शालिभद्र आज तक कभी महल से नीचे नहीं उतरा, वह बहुत ही सुकुमार है, यहां आने में उसे बहुत कष्ट होगा, अत: कृपाकर आप सपरिवार मेरे घर पर पधारकर आतिथ्य स्वीकार करें।

भद्रा की प्रार्थना स्वीकार कर राजा श्रेणिक भवन में पहुँचा। उसकी विशाल शोभा और मनोहर व्यवस्था देखकर चकित रह गया। भद्रा ने राजा का शाही स्वागत किया। शालिभद्र को बुलाने सेवक को ऊपर भेजा। सेवक ने जाकर कहा- ''अपने महलों में राजा श्रेणिक आए हैं, अत: आपको नीचे बुलाया है।'' शालिभद्र ने कहा- ''उसे जो कुछ लेना-देना हो, देकर विदा करो, मेरा वहाँ क्या काम है?'' तब भद्रा स्वयं ऊपर गई, उसने सब स्थिति समझाई- ''श्रेणिक राजा अपने स्वामी हैं, नाथ हैं, वे तुमसे मिलना चाहते हैं, तुमको अपने राज-भवन में बुलाया था, लेकिन मेरी प्रार्थना पर ही वे अपने घर आये हैं, चौथी मंजिल में मैंने उन्हें ठहराया है, बेटा दो-तीन मंजिल उतरकर तो अपने स्वामी का स्वागत करना ही चाहिए.....।''

शालिभद्र माता के आग्रह पर नीचे आया, अनमने भाव से राजा से औपचारिक मुलाकात भी की। श्रेणिक और चेलणा आदि राजपरिवार शालिभद्र के वैभव व सौकुमार्य आदि से अत्यन्त चकित हुए, पर शालिभद्र इस मुलाकात से खिन्न हो गया।

उसने ''स्वामी! नाथ!'' ये शब्द जीवन में पहली बार सुने। इन शब्दों की ध्वनि से उसके मन, मस्तिष्क और अन्तश्चेतना के तार झनझना उठे। उसे आज पहली बार अपनी तुच्छता और पामरता का भान हुआ। उसके मन में पराधीनता की पीड़ा जगी, इस पीड़ा की टीस इतनी गहरी पैठी कि वह व्याकुल हो गया। उस पीड़ा से मुक्त होकर पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए वह सब कुछ निछावर करने को तैयार हो उठा।

इसी बीच वह धर्मघोष नामक मुनि के सम्पर्क में आया, फलस्वरूप उसे पूर्ण स्वतन्त्रता का मार्ग- संयम-साधना का ज्ञान हुआ, धीरे-धीरे उसके मन में विषयों से विरक्ति होने लगी, प्रतिदिन एक-एक पत्नी और एक-एक शय्या का परित्याग कर वह संयम-साधना का अभ्यास करने लगा।

पत्नियों का व्यंग्य और धन्ना की दीक्षा

उसी नगर में धन्ना नाम का धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था। वह शालिभद्र की कनिष्ठ भगिनी का पति था। भाई के संसार-त्याग की बात सुनकर बहिन के हृदय में बन्धु विरह का दुःख भरा हुआ था। धन्ना ने पत्नी की आँखों में आँसू देखकर पूछा:-

''प्रिये! इस चन्द्र-वदन पर शोक की छाया और आँसू की धारा का क्या कारण है?''

''नाथ! मेरा बन्धु गृह-त्यागकर साधु होना चाहता है इसलिए वह एक-एक पत्नी और एक-एक शय्या का प्रतिदिन त्याग करने लगा है। भाई के विरह की संभावना से मेरा हृदय शोक पूर्ण हो रहा है- स्वामिन्''- सुभद्रा ने हृदयगत वेदना व्यक्त की।

''क्या एक पत्नी प्रतिदिन त्यागता है? तब तो वह कायर है। यदि त्याग ही करना है, तो सिंह के समान एक साथ सब कुछ त्याग देना चाहिए। क्रमशः त्यागना तो सत्त्वहीनता है''- धन्ना ने व्यंग्यपूर्वक कहा।

पति का व्यंग्य सुनकर अन्य पत्नियाँ बोलीं- ''यदि त्यागी बनना सरल है, तो आप ही एक-साथ सर्वस्व त्यागकर निर्ग्रंथ-दीक्षा क्यों नहीं लेते? बातें

करना जितना सहज है, कर-दिखाना उतना सरल नहीं है।''

धन्ना ने तत्काल उठकर कहा- ''बस, मैं यही चाहता था। तुम सब मेरे लिए बन्धन बनी हुई थी। तुम्हारी अनुमति मुझे सहज ही प्राप्त हो गई। अभी से मैंने तुम सब का त्याग किया। अब मैं दीक्षित होने जा रहा हूँ।''

पत्नियाँ सहम गईं। उन्होंने कहा- ''नाथ! हँसी में कही हुई बात सत्य नहीं होती। आप हमें क्षमा कीजिए और गृह-त्याग की बात छोड़ दीजिए।''

धन्ना ने कहा- ''धन, स्त्री और कुटुम्ब-परिवार सब अनित्य है। यदि इनका त्याग नहीं किया जाए, तो ये स्वयं छोड़ देते हैं या मरकर छोड़ना पड़ता है। मैं स्वयं संसार का त्याग करना चाहता हूँ।'' कहकर धन्ना खड़ा हो गया।

पति को जाता देखकर पत्नियाँ भी संयम लेने के लिए तत्पर हो गईं। पुण्ययोग से भगवान् महावीर वहाँ पधारे। धन्ना ने दीनजनों को विपुल धन का दान दिया और पत्नियों सहित शिविका में बैठकर भगवान् के समीप गया। सभी ने भगवान् से दीक्षा ग्रहण की। जब ये समाचार शालिभद्र ने सुने, तो उसने सोचा-''बहनोई ने मुझे जीत लिया।'' वह भी तत्काल दीक्षा लेने को तत्पर हो गया। महाराज श्रेणिक ने शालिभद्र का दीक्षा-महोत्सव किया। शालिभद्र भी भगवान् का शिष्य बन गया। धन्ना और शालिभद्र संयम और तप के साथ ज्ञान की आराधना करने लगे। वे बहुश्रुत हुए। वे मासखमण, दो मास, तीन मास, चार मास आदि घोर तप करने लगे। उनका शरीर रक्त-मांस रहित हड्डियों का चर्माच्छादित ढाँचा मात्र रह गया।

माता ने पुत्र और जामाता को नहीं पहचाना

कालान्तर में भगवान् के साथ दोनों मुनि अपनी जन्मभूमि-राजगृह पधारे। भगवान् की वन्दना करने के लिए जनता उत्साहपूर्वक आने लगी। धन्ना और शालिभद्र मुनि मासखमण के पारणे के लिए भिक्षार्थ जाने की अनुज्ञा लेने के लिए भगवान् के समीप आए। नमस्कार किया। भगवान् ने शालिभद्र से कहा- ''आज तुम तुम्हारी माता से मिले हुए आहार से पारणा करोगे।'' दोनों मुनि नगर में भद्रा माता के द्वार पर पहुँचे। मुनियों का शरीर तपस्या से शुष्क हो गया था। वे पहचाने नहीं जा सकते थे। उधर भगवान् तथा पुत्र-जामाता मुनियों को वन्दना करने जाने की शीघ्रता व्यग्रता से भद्रा सेठानी मुनियों की ओर ध्यान नहीं दे सकी। मुनि लौट आये। मार्ग में उन्हें

शालिग्राम की वृद्धा माता धन्या मिली, जो शालिभद्रजी की पूर्व-भव की माता थी। वह दही-दूध बेचने के लिए नगर में आई थी। मुनियों को देखते ही उसके मन में स्नेह उमड़ा। उसने हाथ जोड़कर दही ग्रहण करने का निवेदन किया। मुनि दही ग्रहणकर भगवान् के समीप आए। वन्दना की और दही प्राप्त होने आदि की आलोचना की। भगवान् ने कहा- ''वह दही देने वाली वृद्धा तुम्हारी पूर्वभव की माता है।'' मुनियों ने पारणा किया। दोनों मुनि भगवान् की आज्ञा लेकर वैभारगिरि पर गये और पादपोपगमन अनशन करके शिला पर लेट गये। उधर महाराजा श्रेणिक भद्रा सेठानी सहित वन्दना करने आए। वन्दना करने के पश्चात् धन्ना- शालिभद्र मुनियों के विषय में पूछा। भगवान् ने भद्रा से कहा-''दोनों मुनि तुम्हारे यहाँ भिक्षाचारी के लिए आए थे, परन्तु तुमने उन्हें पहचाना नहीं। उन्हें पूर्वभव की माता से दही मिला। वे पारणा कर के वैभारगिरि पर गये। वहां अनशन करके सोए हुए हैं।''

पुत्र को भिक्षा मिले बिना घर से लौट जाने की बात भगवान् से सुनकर भद्रा को पछतावा हुआ। महाराजा और भद्रा वैभारगिरि पर आये और मुनियों को वन्दन-नमस्कार किया। मुनियों का शुष्क एवं जर्जर शरीर देखकर भद्रा विह्वल हो गई। वह रोती हुई बोली-''हे वत्स! तुम घर आये, परन्तु मुझ दुर्भागिनी ने, तुम्हें देखा ही नहीं और अपने घर से खाली लौट गए। पहले तुमने मेरी ममता पर विजय पाई और अब अपने शरीर का त्यागकर शरीर मोह पर भी विजय पा रहे हो। हा! मैं कितनी भाग्यहीना हूँ।' नरेश ने भद्रा को समझाया- ''भद्रे! तुम्हारा पुत्र तो हम सब के लिये वन्दनीय हो गया। अब ये शाश्वत सुख के स्वामी होंगे। इन्हें परम सुखी होते देखकर तो प्रसन्न होना चाहिए। तुम महान् पुण्यशालिनी माता हो। शोक मत करो।'' भद्रा आश्वस्त हुई और वन्दना करके राजा के साथ लौट गई। यथासमय आयु पूर्ण होने पर धन्ना मुनि उसी भव में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए। जबकि शालिभद्र मुनि सर्वार्थसिद्ध महाविमान में उत्पन्न हुए। वह तैंतीस सागरोपम प्रमाण आयु भोगकर मनुष्य भव प्राप्त करेंगे और तप-संयम की आराधना कर मुक्त हो जाएंगे।

भगवान के धर्म शासन में इस प्रकार त्याग एवं तप के शिखरयात्रियों की एक लम्बी परम्परा चलती रही है। ये गृह जीवन में भी श्रेष्ठ अरिष्ट विशिष्ट बनकर रहे और तप-त्याग के पथ पर बढ़े- तब भी उत्कृष्ट और विशिष्ट बने।

-----●-----

2. मुनि गजसुकुमाल

माता की व्यथा- त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण की माता देवकी थी। वह उदास एवं चिन्तामग्न थी। अनीयसेन, अनन्तसेन, अनीकसेन, अनहितरिपु, देवसेन तथा शत्रुसेन ये छः पुत्र देवकी महारानी के हैं। इस बात का रहस्योद्घाटन भगवान अरिष्टनेमी द्वारा किये जाने के बाद महारानी देवकी की व्यथा बढ़ गई। उनका मातृ हृदय बिलखने लगा। वे सोचने लगीं मैं कैसी भाग्यहीन हूँ, पुण्यहीन हूँ, जो मेरे देव के समान सात पुत्र हुए फिर भी एक भी पुत्र का लालन-पालन नहीं किया।[1] इन छः दिव्य पुत्रों से तो वंचित ही रही तथा सातवें पुत्र श्रीकृष्ण का लालन-पालन भी नन्द यशोदा ने किया।[2]

मैं त्रिखण्डाधिपति की माता हुई, सात-सात उत्तम पुत्रों को जन्म दिया फिर भी इस परमसुख से वंचित ही रही। मुझे उन सामान्य स्त्रियों जितना सुख भी नहीं मिला जिनकी गोद में बालक क्रीड़ा करते हैं और वे परमसुख का अनुभव करती हैं। देवकी इन्हीं विचारों में डूबी हुई थी तभी श्रीकृष्ण वासुदेव अपनी माता को चरण-वन्दन करने पहुँचे। माता को चिन्तामग्न देखकर चरण-वन्दनकर चिन्ता का कारण जाना।

श्रीकृष्ण द्वारा तप आराधन- श्रीकृष्ण ने माता से कहा- 'माताश्री मैं आपका मनोरथ पूर्ण हो, ऐसा प्रयत्न एवं उपाय करूँगा।' इस प्रकार आशास्पद वचनों से माता को सन्तुष्ट करके श्रीकृष्ण पौषधशाला में आये। फिर तेला करके हरिणगमैषी देव की आराधना की। देव का आसन कम्पित हुआ। देव पौषधशाला में आया। तब श्रीकृष्ण ने कहा- 'मुझे एक अनुज बन्धु की आवश्यकता है इसीलिये मैंने तपः साधना की है।' देव ने कहा- 'श्रीकृष्ण तुम्हारे एक छोटा भाई शीघ्र ही होगा किन्तु वह यौवन प्राप्त होते ही भगवान् अरिष्टनेमि के समीप प्रव्रज्या ग्रहण कर लेगा।' देव भविष्य

---

1. अनीकसेन आदि छः भाइयों को हरिणगमैषी देव संहरण कर सुलसा के पास पहुँचाता रहा था। अतः उनका लालन-पालन नाग गाथापति तथा सुलसा के यह हुआ।

2. भगवान अरिष्टनेमि से देवकी महारानी ने पूछा- मैंने ऐसा कौनसा पापकर्म किया जिससे मुझे इस प्रकार पुत्रों के लालन-पालन के सुख से वंचित रहना पड़ा तथा छः पुत्र तो मुझे प्राप्त ही नहीं हुए। भगवान ने समाधान किया- देवकी तुमने पूर्वभव में सौत के सात रत्न चुराये थे, तुम्हारी सौत रोने लगी तो तुमने एक रत्न लौटा दिया किन्तु छः नहीं दिए। इसी का परिणाम है कि तुम्हारा एक पुत्र तो तुम्हें मिल गया किन्तु छः पुत्र नहीं मिले।

बताकर चला गया। श्रीकृष्ण पौषध पूर्ण करके माता के पास आए और बोले- 'माता! मेरे छोटा भाई शीघ्र ही होगा।' माता अतीव प्रसन्न हुई।

गजसुकुमाल का जन्म- वसुदेव महाराजा एवं देवकी रानी के यहाँ यथासमय एक सुंदर पुत्र का जन्म हुआ। उसका शरीर जपाकुसुम जैसा तथा हाथी के तालु के समान सुकोमल था। अतः उसका नाम गजसुकुमाल रखा गया। वह माता-पिता, बन्धु आदि सभी का अत्यन्त प्रिय था। क्रमशः बढ़ते हुए गजसुकुमाल ने यौवनावस्था को प्राप्त किया।

भगवान् अरिष्टनेमि का द्वारिका में आगमन- प्रभु अरिष्टनेमि ग्रामानुग्राम विचरणकर भव्य जीवों का उद्धार करते हुए द्वारिका पधारे। श्रीकृष्ण वासुदेव अपने अनुज बंधु गजसुकुमाल के साथ हस्ति पर आरूढ़ होकर राजसी ठाठ-बाट से प्रभु के दर्शनार्थ निकले।

सोमा का अन्तःपुर में प्रवेश- द्वारिका में सोमिल नाम का बुद्धिसम्पन्न ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी सोमश्री ब्राह्मणी भी सुंदर थी। उनके सोमा नाम की कन्या थी। जो उत्कृष्ट रूप लावण्य एवं शरीर शौष्टव वाली थी। वह अनेक सखियों तथा दासियों के साथ घर से निकलकर क्रीड़ा स्थल पर स्वर्णमय गेंद से खेल रही थी। श्रीकृष्ण वासुदेव उसी मार्ग से होकर भगवान को वन्दना करने जा रहे थे। उनकी दृष्टि खेलती हुई सोमा पर पड़ी। उसके उत्कृष्ट सौन्दर्य को देखकर चकित रह गए। उन्होंने उसका परिचय पूछा एवं विश्वस्त सेवक को आदेश दिया-'तुम सोम शर्मा ब्राह्मण के यहाँ जाओ और उसकी पुत्री की याचना गजसुकुमाल के लिए करो। फिर उसे कुँआरे अन्तःपुर में पहुँचाकर मेरी आज्ञा पालन की सूचना दो। श्रीकृष्ण महाराज की आज्ञा का पालन हुआ, कन्या कुँआरे अन्तःपुर में भेज दी गई।

गजसुकुमाल की प्रव्रज्या एवं मुक्ति- श्रीकृष्ण एवं गजसुकुमाल भगवान् को वन्दन करने पहुँचे। भगवान को वन्दन करके उपदेश सुना। उपदेश का गजसुकुमाल पर गंभीर प्रभाव पड़ा। संसार की असारता समझकर विरक्त हो गए। तथा भगवान को वन्दना कर बोले- 'प्रभु आपके उपदेश से मैं विषय-विकार और संसार सम्बन्धों से विरक्त हो गया हूँ। मैं माता-पिता से अनुमति प्राप्त करके श्री चरणों में निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। भगवान ने कहा- 'देवानुप्रिय! तुम्हें जैसा सुख हो, वैसा करो। धर्म साधना में विलम्ब मत करो।'

गजसुकुमाल राजमहल आए तथा माता-पिता से जिनेश्वर भगवन्त के

समीप निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति के लिए प्रार्थना की। माता-पिता ने बहुत समझाया कि भुक्त भोगी होकर प्रव्रज्या ग्रहण करना। श्रीकृष्ण ने भी भाँति-भाँति की युक्तियों द्वारा समझाने का प्रयास किया तथा अंतिम उपाय के रूप में प्रलोभन उपस्थित किया 'हम चाहते हैं कि एक दिन के लिये ही राज्याधिकार ग्रहण कर लो। हम तुम्हारी राज्यश्री देखना चाहते हैं। हमारी एक अंतिम इच्छा तो पूर्ण कर दो।'

कुमार माता-पिता बन्धु की इस बात पर विचारपूर्वक मौन रह गए। श्रीकृष्ण के आदेश से राज्याभिषेक हुआ। गजसुकुमाल महाराजाधिराज होकर राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुए। श्रीकृष्ण ने राज्याधिपति कुमार के सम्मुख खड़े होकर पूछा- 'राजन्! आज्ञा दीजिए कि हम आपका किस प्रकार हित करें। हमें क्या करना चाहिए?' महाराजा गजसुकुमाल ने कहा- 'हे देवानुप्रिय! राज्य के कोषालय से तीन लाख स्वर्णमुद्राएं निकालकर, उनमें से दो लाख के रजोरहण तथा पात्र मंगवाओं, नापित को बुलवाओ, मैं उससे अपने बाल कटवाऊँगा और उसे एक लाख पारितोषिक दूंगा। आप मेरे अभिनिष्क्रमण की तैयारी कीजिए।'

माता-पिता आदि सभी समझ गए कि गजसुकुमाल को किसी भी प्रलोभन से नहीं रोका जा सकता। उन्होंने अनुमति प्रदान कर दी तथा दीक्षा महोत्सव किया। गजसुकुमाल ने निर्ग्रन्थ मुनि प्रव्रज्या स्वीकार की।

प्रव्रज्या स्वीकार करने के बाद गजसुकुमाल ने प्रभु से प्रार्थना की- भगवन्! यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं महाकाल श्मशान में जाकर एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा धारण करना चाहता हूँ। भगवान ने अनुमति प्रदान कर दी। मुनिजी विधिपूर्वक भिक्षु प्रतिमा धारण करके कार्योत्सर्ग पूर्वक ध्यान में लीन हो गए।

सोमिल ब्राह्मण यज्ञ के लिए समिधा, दर्भ, पुष्पादि लेने के लिये वन में गया था। वह समिधादि लेकर महाकाल श्मशान के निकट से निकल रहा था तभी उसकी दृष्टि ध्यानारूढ़ गजसुकुमाल मुनि पर पड़ी। उसका क्रोध भड़का। पूर्वबद्ध वैर जागृत हो गया। उसने सोचा इस दुष्ट ने मेरी निर्दोष पुत्री का त्याग कर दिया और यहाँ महात्मापन का ढोंग कर रहा है। इसे ऐसा दण्ड दूँगा कि सारा ढोंग समाप्त हो जाएगा। सन्ध्या का समय था, लोगों का आवागमन रूक चुका था। उसने तलैया के किनारे की गीली मिट्टी ली और ध्यानस्थ अनगार के मस्तक पर उस मिट्टी की पाल बाँध दी। एक फूटा

मिट्टी का बर्तन उठाया तथा शव दहन के जलते अंगारों को भरकर मुनि के मस्तक पर डाल दिया। इसके बाद वहाँ से भाग गया।

मुनि के सिर पर अंगारे पड़ते ही मस्तक जलने लगा और घोर वेदना होने लगी। वह आग तो शरीर को जला रही थी किन्तु आभ्यंतर ध्यानाग्नि से कर्म रूपी कचरा भी जलकर भस्म हो रहा था। असहनीय घोरतम वेदना शरीर में बढ़ रही थी तो दूसरी ओर आत्मस्थिरता एवं एकाग्रता बढ़ रही थी। वे महात्मा क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। घनघाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त किया तथा सिद्ध गति को प्राप्त हो गए। गजसुकुमाल अनगार सिद्ध परमात्मा बन गए। देवों ने सुगन्धित जल, पंचवर्ण के सुगन्धित पुष्पों एवं वस्त्रों की वर्षा की तथा वाद्यन्त्र तथा गीत से उन महर्षि की आराधना का गुणगान किया।

सोमिल की मृत्यु- दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीकृष्ण सपरिवार भगवान को वन्दन करने पहुँचे। वन्दन नमस्कार के बाद गजसुकुमाल अणगार नहीं दिखाई दिए तो भगवान से पूछा- 'भगवन्! मेरे छोटे भाई मुनि गजसुकुमाल कहाँ है? मैं उनको वन्दन करना चाहता हूँ।' भगवान ने कहा- 'कृष्ण! गजसुकुमाल अनगार ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है।' श्रीकृष्ण ने आश्चर्य से पूछा- 'भगवन! यह कैसे हुआ? गजसुकुमाल ने एक रात में ही आत्मार्थ साधकर मुक्ति कैसे प्राप्त कर ली?' भगवान ने कहा- प्रव्रजित होने के पश्चात्- गजसुकुमाल मुनि मुझसे आज्ञा प्राप्त करके भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा धारण कर महाकाल श्मशान में कार्योत्सर्ग कर ध्यानस्थ खड़े हो गए। इसके बाद उधर से एक पुरुष निकला, उसकी सहायता से मुनिवर ने क्षपक श्रेणी का आरोहण कर घनघाति कर्मों को नष्ट किया एवं केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर लिया, फिर योगों की प्रवृति को रोककर सिद्ध अवस्था मुक्ति को प्राप्त कर लिया।

'भगवन! मृत्यु दण्ड के योग्य वह पापात्मा कौन है? जो मेरे छोटे भाई की अकाल मृत्यु का कारण बना?' श्रीकृष्ण ने क्षोभ एवं आतुरतापूर्वक पूछा। भगवन् ने फरमाया- 'श्रीकृष्ण तुम उस पर रोष मत करो। उस पुरुष ने तो गजसुकुमाल अनगार की मुक्ति में सहायता की है। उसने लाखों वर्षों पुराने संचित कर्मों से मुक्त करवाकर कर्मों की निर्जरा में सहायता दी है।'

कृष्ण बोले- 'भगवन्! वह कौन है? मैं उसे कैसे पहचान सकूँगा?' भगवान ने कहा-'तुम यहाँ से नगर लौटोगे तब रास्ते में तुम्हें देखते ही जो

व्यक्ति प्राण त्याग दे, जान लेना वही पुरुष है।'

श्रीकृष्ण दुखित मन से प्रभु को वन्दन कर लौटे। इधर प्रातःकाल सोमिल ब्राह्मण को विचार आया, मैंने गजसुकुमाल के सिर पर अंगारे रखे थे। महाराज श्रीकृष्ण जब प्रातःकाल भगवान को वन्दन करने जाएंगे तब उनको सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु सब कुछ बता देंगे। तब श्रीकृष्ण महाराज अपने भ्राता मुनि के हत्यारे को कुमौत से मारेंगे। इस प्रकार सोचकर भयभीत होता हुआ नगर से भाग जाने को घर से निकला। इधर वह घर से निकला उधर से कृष्ण महाराज लौटते हुए दिखाई दिए। उन्हें देखते ही भय से उसके प्राण निकल गए। श्रीकृष्ण समझ गए, यही मेरे लघु भ्राता अनगार का घातक है।

मुनि गजसुकुमाल के वियोग का आघात कृष्ण महाराज सहित बहुत परिजन पुरजन को लगा। उठती युवावस्था एवं अस्वाभाविक नृशंसतापूर्ण मृत्यु से विरक्त होकर समुद्रविजयजी आदि दर्शाह, भगवान अरिष्टनेमि के सात सहोदर बन्धु, माता शिवादेवी, अनेक राजकुमार, यादव कुल की अनेक महिलाओं और राजकुमारियों ने प्रभु के समीप दीक्षा अंगीकार कर मुक्ति पथ पर कदम बढ़ाए।

-----●-----

3. महासती मदनरेखा

सुदर्शनपुर नाम के नगर में मणिरथ नाम का राजा था। राजा मणिरथ के छोटे भाई का नाम युगबाहू था। युगबाहू वीर, कलाकुशल तथा विनम्र था। युगबाहू की पत्नी मदनरेखा थी। रूप और लावण्य में कामदेव सी सुन्दरता देखकर ही माता-पिता ने उसका मदनरेखा नाम रखा। मणिरथ और युगबाहू दोनों भाइयों में आदर्श भ्रातृ स्नेह था। राजा मणिरथ अपने छोटे भ्राता को पुत्रवत् रखता। युगबाहू भी अपने बड़े भ्राता को पितृ-तुल्य आदर देता तथा उनकी इच्छाओं के विरुद्ध कुछ भी कार्य न करता।

---

1. निन्यानवें लाख भव पूर्व सोमिल ब्राह्मण का जीव गजसुकुमाल के जीव की सौत का पुत्र था। पुरजन परिजन सभी उस सौत को पुत्र की माँ होने से अधिक आदर सम्मान देते तथा उसके पति का भी उस पर अधिक प्रेम था। इससे वह दुःखी (गजसुकुमाल का जीव) रहती थी। तब गजसुकुमाल के जीव ने सोचा पुत्र ही न रहे तो सारा झंझट खत्म हो जाए। एक बार सौत का पुत्र बीमार हुआ। उसने औषधि का बहाना बनाकर उस बालक के सिर पर गरम-गरम रोटी बाँध दी, तीव्र वेदना बालक सहन न कर सका और उसने प्राण त्याग दिए। तब गजसुकुमाल की आत्मा ने निकाचित कर्म को बाँध लिया। इस बैर के परिणामस्वरूप सोमिल ब्राह्मण ने भी उनके मस्तक पर पाल बांधी तथा अंगारे रखकर वैर का बदला लिया।

एक बार राजा मणिरथ ने विचार किया मेरा छोटा भाई युगबाहू वीर, विनम्र, न्याय नीति कुशल और मेरा भक्त है। यह मेरा उत्तराधिकारी बनने के सर्वथा योग्य है इसलिए इसे युवराज पद देकर अपने भार से थोड़ा मुक्त हो जाऊँ। उसने भाई को आग्रह पूर्वक युवराज बना दिया।

राजा मणिरथ की कुदृष्टि

एक बार मदनरेखा अपने महलों की छत पर सखी-सहेलियों के साथ उन्मुक्त रूप से बैठी थी। मणिरथ भी अपनी छत पर घूम रहा था, उसकी नजर सीधी मदनरेखा के दिव्य सौन्दर्य पर गड़ गई। समूचे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। मदनरेखा को उसने बहुत बार देखा था, किन्तु आज का देखना कुछ विचित्र ही था। इतने दिन पुत्री की नजर से देखा था, आज नारी की नजर से। इतने दिन देखने पर मन प्रसन्न होता था, आज देखते ही व्याकुल हो गया।

मणिरथ ने मदनरेखा को अपनी ओर आकृष्ट करने के हजारों प्रयत्न किए। विश्वस्त दासियों के साथ सुंदर भोग-सामग्रियाँ उसे भेजनी शुरू की। अनेक कामोत्तेजक भोज्य पदार्थ, मिठाइयाँ और सुगंधित श्रृंगार सामग्रियों के थाल भरकर मदनरेखा के महलों में आने लगे। मदनरेखा ने इसे मणिरथ का पितृ-प्रेम एवं वात्सल्य समझा। वह आदरपूर्वक स्वीकार करती गई। दुराशय मणिरथ ने इस स्वीकृति को ही मदनरेखा की प्रणयेच्छा समझ लिया था। सोचा- मदनरेखा अवश्य ही मुझे चाहती है और एक दिन मौका देख कर सीधा मदनरेखा के महलों में चला आया।

मदनरेखा चौंक उठी। उसकी आकुल आँखों और चेहरे के प्रणयाकुल रंग-ढंग से वह समझ गई- मणिरथ पथभ्रष्ट होने जा रहा है! ऐसे समय में जेठ का लिहाज उसके धर्म के लिए खतरा बन जाएगा। वह सावधान होकर खड़ी हो गई और दृढ़ स्वर में पूछा - ''महाराज! आप अकेले यहाँ? इस समय? मैं तो आपकी पुत्री हूँ, जो भी आज्ञा थी, सूचना करते, आपका यहाँ आना उचित नहीं है!''

मदनरेखा के सौन्दर्य पर दृष्टि गड़ाये मणिरथ ने निर्लज्जतापूर्वक कहा- ''मदनरेखा प्यार में कुछ भी अनुचित नहीं होता, कोई भी असमय नहीं होता! अप्सराओं को मात देनेवाले तुम्हारे इस सौन्दर्य ने कब से मुझे बैचेन कर रखा है, आखिर आज ही मौका लगा है....!''

'महाराज! आप गुमराह हो गए हैं। मैं आपके छोटे भाई की बहू तो आपकी पुत्री तुल्य हूँ। पुत्री पर बुरी नजर? पिता ही अपनी पुत्रियों पर बुरी नजर करने लगेगा तो संसार में फिर धर्म रहेगा कहाँ? महाराज! आप चुपचाप चले जाइए, नहीं

तो अनर्थ हो जाएगा.....।'

मदनरेखा की फटकार से मणिरथ का नशा उतर गया। शर्म से मुँह नीचा झुकाए वह लौट आया। मदनरेखा को पाने के लिए वह कई गुप्त योजनाएँ बनाने लगा।

मदनरेखा इस विष घूंट को चुपचाप पी गई। पति से भी उसने इस बात की चर्चा नहीं की। उसे डर था, कहीं इस छोटी-सी बात पर भाई -भाई में मन-मुटाव न हो जाए।

मणिरथ का दुष्प्रयत्न

मणिरथ ने एक बार युगबाहू से कहा- ''बंधु! सीमा पार के कुछ क्षेत्रों में अशांति बढ़ रही है। उपद्रवी तत्त्व सिर उठा रहे हैं, अत: मुझे वहाँ जाना जरूरी है।''

युगबाहू ने विनयपूर्वक कहा- ''महाराज! मेरे होते आपको उधर जाने की जरूरत क्या है? आप यहीं रहिए, मैं स्वयं सेना लेकर जाऊंगा और सब कुछ ठीक कर आऊँगा।''

मणिरथ तो यही चाहता था। युगबाहू के प्रस्थान की तैयारी होने लगी। मदनरेखा से युगबाहू ने जब अपने युद्ध-प्रस्थान की स्वीकृति माँगी तो वह चौंक गई। उसे मणिरथ के षड्यंत्र की बू आने लगी। उसका चेहरा फक हो गया। युगबाहू ने धैर्य बंधाकर कहा- ''मैं कई बार बड़े-बड़े युद्धों में गया, तुमने सदा हँसी-खुशी से मुझे बधाकर विदा किया, मैं विजय ध्वज फहराकर ही आया। आज इस छोटी-सी बात पर तुम इतनी चिंतित, उदास क्यों हो गई?''

युगबाहू के बार-बार पूछने पर मदनरेखा ने उस दिन की घटना सुनाई। सुनते ही युगबाहू का हृदय तड़प उठा किंतु मदनरेखा को आश्वस्त करने के लिए वह बोला-''मेरे भाई इस प्रकार का नीच-विचार नहीं कर सकते, हो सकता है वे किसी अन्य कारण से आए हों, और तुमने उन्हें गलत समझ लिया। वहम और गलतफहमी से बड़े-बड़े साम्राज्य चौपट हो जाते हैं, इसलिए तुम मेरे भाई पर किसी प्रकार का वहम मत करो।''

चतुर मदनरेखा सब कुछ समझ रही थी। फिर भी उसने पति को प्रसन्न करने के लिए कहा-''प्राणेश! हो सकता है आपका ही अनुमान ठीक हो, फिर भी युद्ध में जाते समय सावधान रहिए।

मदनरेखा की अश्रुभीनी विदाई लेकर युगबाहू ने सीमा पार युद्ध के लिए प्रस्थान किया। पीछे से मौका देखकर मणिरथ ने मदनरेखा को फुसलाने की अनेक चेष्टाएं कीं! किंतु, उसकी कड़ी फटकार सुनकर मणिरथ का साहस टूट गया। इधर शीघ्र ही शत्रुओं का दमन कर युगबाहू राजधानी सुदर्शनपुर को लौट आया।

कुछ समय बाद मदनरेखा गर्भवती हुई। गर्भ के समय में शांति, प्रसन्नता और शुद्ध वातावरण में रहने के लिए पति-पत्नी नगर के बाहर उपवन में ही रहने लगे। इधर मणिरथ के हृदय को काम-ज्वालाएँ जलाने लगीं। वह मदनरेखा को पाने के लिए बड़ा बैचेन हो गया। और कोई रास्ता नहीं देखकर उसने युगबाहू को मार डालने का निश्चय किया। सोचा-''अनाथ असहाय नारी आखिर कहाँ जाएगी? विवश हो फिर सीधी मेरे अंचल में ही सहारा लेगी।''

बन्धु हत्या

रात के गहन अंधकार में मणिरथ अकेला घोड़े पर चढ़कर उपवन की ओर चल पड़ा। हाथ में तलवार लिए जैसे ही वह उपवन के द्वार पर पहुँचा तो पहरेदारों ने रोका। मणिरथ ने ललकार कर कहा- ''चुप रहो! भाई से बहुत जरूरी काम है, मुझे अभी मिलना है।''

पहरेदार ने आगे बढ़कर जैसे ही राजा को रोकना चाहा, मणिरथ ने एक जबर्दस्त धक्का देकर उसे दूर फेंक दिया। वह घोड़े से उतर कर सीधा युगबाहू के शयनकक्ष में पहुँच गया। पहरेदारों के शोर से मदनरेखा की नींद टूट गई थी। सावधान होकर उसने पति को जगाया- ''महाराज कोई दुष्ट आ रहा है, सावधान हो जाइए!'' युगबाहू ने जैसे ही खड़े होकर सीढ़ियों की ओर देखा, उद्भ्रांत-सा मणिरथ हाथ में नंगी तलवार लिए आ रहा था। युगबाहू को अभी भी विश्वास नहीं हुआ कि भाई उसके खून का प्यासा बनकर आया है। उसने उठकर जैसे ही बड़े भाई के चरण छूने को सिर झुकाया, मणिरथ ने तलवार के एक झटके में ही उसे भूमि पर गिरा दिया। युगबाहू धड़ाम से गिर पड़ा। मदनरेखा चीख उठी। पहरेदार दौड़े, किन्तु तब तक हत्यारा मणिरथ घोड़े पर चढ़कर कहीं भाग गया।

धर्मसहाय

मदनरेखा ने दौड़कर पति का सिर गोद में ले लिया। युगबाहू सिसक रहा था। मदनरेखा ने हृदय को मजबूत बनाया। उसने सोचा-''यह रोने का समय नहीं है। पतिदेव अंतिम सांस ले रहे हैं, परलोक की यात्रा को जा रहे हैं। यह मूल्यवान घड़ी उनके अंतिम उद्धार की घड़ी है। वह शांत, प्रसन्न होकर प्रस्थान करेंगे तो परलोक में भी शांति मिलेगी। यहाँ अंतिम समय में क्रोध, रोष और दुर्विचारों में जलते-जलते जाएंगे तो परलोक में भी जलते रहेंगे।'' मदनरेखा ने पति को पुकारा- 'पतिदेव! शांत रहिए! भूल जाइए, आपको किसी ने मारा है। सोचिए, अपना आयुष्य ही क्षीण हो गया है।'' भाई पर क्रोध मत रखिए! मुझ पर मोह मत

कीजिए। मृत्यु की घड़ी तो एक दिन आने ही वाली थी। अब तो अपने परलोक का सुधार कीजिए! भगवान का नाम लीजिए, नवकार मंत्र का स्मरण कर मन को प्रसन्न बनाइए, प्राणिमात्र से क्षमा-याचना कर सबको अपना मित्र समझिए।''

मदनरेखा के शांत एवं प्रेरणादायी वचनों ने युगबाहू का हृदय बदल दिया। अंतिम समय में उसे सांत्वना और समाधि मिली, प्रभु का नाम लेते-लेते युगबाहू ने प्राण त्याग दिए।

वन की शरण

मदनरेखा का हृदय हाहाकार कर उठा। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। अब तक वह पति को धैर्य बँधा कर उसकी गति सुधारने में लगी थी, पति के प्राण त्यागते ही उसका धीरज टूट गया! उसने देखा, चारों ओर भयंकर सन्नाटा था। पहरेदार युगबाहू के पुत्र चंद्रयश को खबर देने राजधानी में दौड़कर गया था, अभी तक लौटा नहीं था। मदनरेखा ने सोचा- ''मणिरथ ने जिस दुष्ट उद्देश्य से युगबाहू की हत्या की है,वह उसे पूरा करने पर तुल गया है, वह मुझे पाने के लिए और भी कुछ अन्याय कर सकता है। मेरा धर्म तो खतरे में है ही, किंतु चंद्रयश का जीवन भी सुरक्षित नहीं है। अत: अपने शील की रक्षा के लिए, चंद्रयश की भलाई के लिए मेरा यहाँ से भाग निकलना ही ठीक है। दुष्ट मणिरथ को जब मैं न मिलूंगी तो वह चंद्रयश को अपने आप ही संभालेगा।'' मदनरेखा ने गहरा विचार किया और साहस बटोरा। दिल को पत्थर बनाकर मृत पति के सामने खड़ी हो दो क्षण प्रभु का नाम लिया और उपवन के पिछले रास्ते से जंगल की और निकल पड़ी।

भयंकर रात! सांय-सांय करता जंगल! चारों ओर फैला घोर अंधकार, गर्भ की पूर्णस्थिति में भी मदनरेखा जंगल की ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों पर अकेली चल रही है। भय तो अब उसके मन में रहा ही नहीं। पति शोक से कभी-कभी आँखें भर आती हैं, पर मन को समझा लेती है-''जो होनहार था, वह हो चुका है, पति की अंतिम घड़ी में मैंने धर्म का सहारा दिया है, पति को अवश्य ही सद्गति मिली होगी- बस, मेरा कर्त्तव्य पूरा हो चुका''- यही सोचकर मदनरेखा मन को वज्र-सा बनाकर आगे चली जा रही थी।

पुत्र जन्म

सहसा मदनरेखा के पेट में भयंकर दर्द उठा। एक वृक्ष के निकट वह बैठ गई। तारों के झिलमिल प्रकाश में वह आसपास की भूमि को देख रही थी। वहीं उसने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया, पुत्र के हाथ में पति के नाम की मुद्रिका बाँधकर उसे

साड़ी के आधे टुकड़े में लपेटा और वृक्ष की डाल में लटका दिया। स्वयं शरीर को शुद्ध करने के लिए पास ही बहते एक झरने की ओर गई। स्नान आदि करके मदनरेखा उठने लगी तो एक मस्त हाथी ने उसे सूंड में पकड़कर गेंद की तरह आकाश में उछाल दिया। उसी समय कोई विद्याधर विमान में बैठा इधर से गुजरा। मदनरेखा को गिरते देखकर उसने बीच ही में झेल लिया। कुछ समय बाद मदनरेखा होश में आई। एक पुरुष के सामने स्वयं को देखकर वह भयभ्रांत हो उठी! उसे लगा– खाई से निकली और कुएं में जा गिरी। फिर भी साहस करके उसने कहा– ''महाराज! आपने कृपा कर मुझे बचाया, इसके लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ। किंतु मेरा नवजात पुत्र वन में अकेला है, आप मुझे उसके पास जाने दीजिए!''

विद्याधर ने कहा– 'डरो मत! मेरा नाम है मणिप्रभ विद्याधर! मैं अनेक विद्याओं का स्वामी और बहुत बड़ा राजा हूँ। आज तो मेरा सौभाग्य ही था कि तुम्हारे जैसी अनिंद्य सुंदरी का यों अचानक दर्शन हो गया। तुम जरूर विपत्ति से घिरी हो, पर घबराओ मत! अब तुम्हारे दुःख के दिन दूर हो गए, तुम चलो, मेरी महारानी बनकर संसार के सब सुख भोगो! और पुत्र की क्या चिंता है? वह तो बड़ा भाग्यशाली है। अब वह जंगल में नहीं, किन्तु मिथिला पति पद्मरथ राजा के राजमहल में पहुँच गया है और वहाँ उसका लालन-पालन हो रहा है।''

पुत्र का सुख-संवाद सुनकर मदनरेखा का मन आश्वस्त हुआ किंतु स्वयं को जाल में फँसी देखकर वह घबरा रही थी। उसने कहा– '' श्रीमान! आप अभी कहाँ जा रहे थे। उसने कहा मेरे पिता श्री मणिचूड़ मुनि जो महाज्ञानी हैं उनके दर्शनार्थ जा रहा था, मदनरेखा ने कहा मुझे भी पहले उनके दर्शन करा दीजिये।

संत समागम

विमान में बैठकर दोनों ही मुनि के चरणों में पहुँचे। ज्ञानी मुनि ने देखा– ''एक ओर यह महासती! शील रक्षा के लिए प्राणों को हथेली में लिए निकल पड़ी है, दूसरी ओर यह काम-विलासी पुत्र! उसके शील को भंग करने पर तुला हुआ?'' तभी अचानक एक दिव्य रूपधारी देवता आकाश से उतर कर मदनरेखा के चरणों में झुक आया। फिर उसने मुनि को नमस्कार किया। मुनि ने उपदेश दिया, मणिप्रभ का मन जाग उठा। उसे अपने दुर्विचारों पर पश्चात्ताप होने लगा। उसने मुनि के समक्ष ही परस्त्री-गमन का त्याग कर लिया, और मदनरेखा को बहन कहकर पुकारा।

मणिप्रभ ने देवता की ओर संकेत करके कहा-''गुरुदेव! यह उलटी गंगा कैसे बह गई?''

मुनि ने कहा- ''मणिप्रभ! गंगा सीधी ही बही है, यह देव इस महासती मदनरेखा के इसी भव का पति है- युगबाहू! अंतिम समय में सती ने जो धार्मिक सहयोग किया, पति के मन को शांति और समाधि पहुँचाई, उस कारण यह दिव्य ऋद्धि वाला देव बना है। अपने उपकार का स्मरण कर प्रथम सती को नमस्कार किया, इसमें कोई अनुचितता नहीं है।

पति को देव रूप में उपस्थित देखकर मदनरेखा की आंखों में हर्ष के आंसू उमड़ आये, हृदय भर गया।

युगबाहू देव ने पुनः नमस्कार कर कहा- ''महासती! तुम्हारे उपकार से मैं कभी ऋण मुक्त नहीं हो सकता। तुमने सच्चा पतिव्रत धर्म निभाया है। अंतिम घड़ी में यदि तुम्हारे अमृत-वचनों से मेरा हृदय शांत नहीं हुआ होता तो पता नहीं, मेरी कौनसी दुर्गति हुई होती। जो गति भाई की हुई है, वही मेरी होती ...... यह सब तुम्हारा ही उपकार है....।''

जिज्ञासावश मदनरेखा ने पूछा- ''देवानुप्रिय! उधर मेरे निकल आने के बाद क्या घटना चक्र घटा?''

युगबाहू देव- ''सती! संसार में पाप हमेशा ही पापी को खा जाता है। मेरी हत्या करके मणिरथ जैसे ही नीचे उतर कर आया, पहरेदारों ने शोर मचाया। वह राजा था, फिर भी अन्यायी था, अन्याय उसे काटने लगा, वह डरकर घोड़े पर चढ़कर जंगल की ओर गया। कुछ ही दूर गया कि एक काले नाग पर घोड़े का पांव लग गया। नाग ने फुफकार कर मणिरथ के पाँव में काटा, वह वहीं ढेर हो गया। चंद्रयश ने आकर जब मेरी मृत देह देखी तो फूट-फूटकर रो पड़ा, फिर मणिरथ और तुम्हारी खोज शुरु हुई। मणिरथ की मृतदेह जंगल में मिल गई, तुम्हारा कोई अता-पता नहीं चला। अब धीरे-धीरे दुःख भुलाकर अपना राज्य संभाल रहा है, सुखी है।''

सुनते-सुनते मदनरेखा की आँखे डबडबा आई और बोली-''देवानुप्रिय! अब मेरे नवजात पुत्र का क्या हाल है?'' मदनरेखा ने पूछा। ''महासती! तुम्हारा पुत्र बहुत ही भाग्यशाली है। तुम वृक्ष की डाल में लटका कर जैसे ही शुद्धि करने को गई, पीछे से मिथिला नरेश पद्मरथ उधर आ पहुँचे थे। बालक का धीमा रुदन सुनकर वे निकट आए और उस तेजस्वी बालक को देखकर हर्ष विह्वल हो उठे। वह पुत्रहीन था, उसे लगा-भाग्य ने ही उसे यहाँ भेजा है, वह बालक को ले गया। और अपने स्व-जात पुत्र की भाँति उसका लालन-पालन कर रहे हैं।''

''देवानुप्रिय! संसार का यह असाररूप मैं देख चुकी हूँ। अब मेरी इच्छा है,

संयम लेकर आत्म-कल्याण करूं, किंतु इससे पूर्व एक बार पुत्र का मुँह देखना चाहती हूँ।'' - मदनरेखा ने युगबाहू देव से कहा।

मदनरेखा की इच्छा देखकर देव युगबाहू ने महासती को मिथिलापुरी चलने का आग्रह किया। यह सब घटनाचक्र सुनकर मणिप्रभ विद्याधर भी गद्‌गद्‌ हो उठा था। उसने क्षमा मांगकर मदनरेखा को अपनी धर्म बहन बनाया। सबने मुनि को नमस्कार किया और अपनी -अपनी दिशा की ओर चल पड़े।

दीक्षा

मदनरेखा मिथिला में आई। आते-आते उसका हृदय बदल गया। पुत्र मोह से भी वह उदासीन हो गई। देव युगबाहू से उसने कहा- ''देवानुप्रिय! अब मुझे पुत्र के पास नहीं, किंतु किन्हीं साध्वियों की संगति में पहुँचा दीजिए। मेरा मन अब संसार त्याग कर साध्वी बनने का निश्चय कर चुका है। जब मन विरक्त हो गया तो फिर पुत्र, परिवार का मोह कैसा, किसलिए ?''

मदनरेखा साध्वियों के पास पहुँच गई और दीक्षित होकर वह कठोर तपश्चरण में जुट गई।

भ्रातृ मिलन

पद्मरथ के राजमहलों में जो बालक पल रहा था उसका नाम रखा गया- नमि! वह बचपन में ही बड़ा तेजस्वी और प्रखर प्रतिभाशाली था। युवा होने पर 'नमि' मिथिला के राजसिंहासन का स्वामी बना।

एक दिन नमि राजा का पट्ट-हस्ती, जो श्वेत हस्ती था और राजा को बड़ा प्रिय था, मदोन्मत्त होकर जंजीरें तोड़ डाली और जंगल में भाग गया। हजारों सैनिक उसके पीछे दौड़े, पर उसे कोई पकड़ नहीं सके। दौड़ता-दौड़ता वह राजा चंद्रयश की सीमा में घुस गया। चंद्रयश के सीमारक्षक सुभटों ने उसे पकड़ लिया। श्वेतहस्ती को देखकर चंद्रयश बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उसे अपना पट्ट-हस्ती बना लिया।

नमिराज ने जब यह समाचार सुने तो चंद्रयश से हाथी लौटाने की मांग की। चंद्रयश ने इस मांग को कायरता कह कर ठुकरा दिया। दोनों ही राजा युवा थे, तेजस्वी थे, बस बात की बात में युद्ध के नगारे बज उठे। दोनों ओर की सेनाएँ मैदान में आ डटीं।

तप:लीना महासती मदनरेखा ने जब चंद्रयश और नमि राजा के बीच युद्ध का संवाद सुना तो उसका सुप्त मातृत्व बिलख उठा। आज उन्हें कौन समझाए कि

एक हाथी के लिए भाई, भाई का खून बहाने जा रहा है। उसके सिवाय यह रहस्य और किसी को ज्ञात भी नहीं था! अज्ञान और मोह के कारण अभी नर रक्त की नदियाँ बह जाएगी और हरी-भरी धरती नरमुंडों से श्मशान बन जायेगी। सती का करूणाशील ह्रदय पसीज उठा। उसने वहाँ जाने का निश्चय किया।

मदनरेखा ने भारी ह्रदय से गुरुणीजी के समक्ष यह सब रहस्य प्रकट किया। गद्‌गद्‌ हो गुरुणी जी ने कहा-''महासती! ऐसे समय में क्षण भर का भी विलंब मत करो! तुम्हारा एक अमृतवचन ही इस युद्ध अग्नि को शांत कर सकेगा, जाओ! दो साध्वियों को साथ लेकर! शांति का उपदेश करो! लाखों निरपराधों की हत्या से बचाओ इस पवित्र भूमि को।''

महासती मदनरेखा सीधी राजा चंद्रयश के खेमे में पहुँची। युद्ध क्षेत्र में साध्वियों का आगमन सुन चंद्रयश चौंका, दूसरे ही क्षण, तप:स्तेज से दीप्त श्वेतवसना मदनरेखा के रूप में उसने अपनी माँ को देखा तो हर्ष विभोर होकर वह उनके चरणों में झुक गया।

मदनरेखा ने सब स्थिति स्पष्ट की और बताया- ''नमिराज कोई पराया नहीं, किंतु तुम्हारा ही छोटा भाई है।'' चंद्रयश सुनते ही हर्ष से उछल पड़ा। उसके मन का रोष, स्नेह में बदल गया। वह सीधा भाई से मिलने को चल पड़ा।

महासती मदनरेखा चंद्रयश से भी पूर्व नमिराज के निकट पहुँची। जब उसे ज्ञात हुआ कि यही उसकी जन्मदात्री मां है और जिसके विरुद्ध वह तलवार उठा रहा है, वह है उसका बड़ा भाई! सहोदर! बस, इधर नमिराज भी भाई से मिलने को आतुर हो उठा। तभी चंद्रयश ने दौड़कर छोटे भाई को बाहों में उठा लिया। छाती से चिपका लिया। हर्ष के आँसुओं से दोनों के ह्रदय भीग गए।

युद्ध भूमि में प्रेम का यह सागर लहराता देखकर सब की आँखों में स्नेह के बादल उमड़ आए। और युद्धभूमि स्नेह भूमि बन गई। 'महासती मदनरेखा की जय!' से आकाश पाताल गूँज उठे!

कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। राजा मणिरथ अपनी दुष्टता के कारण मरकर नरक में गया। युगबाहु मदनरेखा की सहायता से महाऋद्धिवाला देव बना। महासती मदनरेखा अपने शुभ भावों के साथ उत्कृष्ट संयम पालकर मोक्ष में पधारी तथा चंद्रयश एवं नमिराज भी कालान्तर में संयम लेकर धर्म की उत्कृष्ट आराधना करते हुए सिद्ध-बुद्ध-मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए।

-----●-----

काव्य विभाग

1. परमात्म बत्तीसी

तर्ज- हरि गीतिका (रत्नाकरपच्चीसी)

मैत्री सकल-जग-जीव से, आनन्द गुणियों में रहे,
जो कष्ट पीड़ित जीव, करुणा-स्त्रोत उनके हित बहे।
विपरीत पथ पर चरण रख, जो नर यहाँ हैं चल रहे,
हे नाथ! मेरी आत्मा, मध्यस्थ उनके प्रति रहे।।1।।

है भिन्न आत्मा देह से, जो अमित शक्ति निधान है,
सब दोष से उन्मुक्त जिसका, सहज रूप महान है।
ज्यों म्यान से तलवार को, हम पृथक करते हैं सदा,
हे जिन! तुम्हारी पा कृपा, वह आत्म बल पाएँ सदा।।2।।

हो दुःख या सुख शत्रु अथवा बन्धु का सहवास हो,
संयोग या कि वियोग हो, घर या अरण्य निवास हो।
ममता भरी जो भावना, वह सर्वथा ही दूर हो,
हे नाथ! सबके प्रति सदा, सम मन मेरा भरपूर हो।।3।।

अज्ञान तम को दूर करने में, तेरे दीपक-चरण,
मेरे हृदय का हो सदा, बस एकमात्र वही शरण।
होवे बसे या लीन हो, या कीलवत् दिल में गड़े,
प्रतिबिम्ब सम हे मुनि शिरोमणि! वे हृदय में हो पड़े।।4।।

भ्रमवश यह चलते हुए, एकेन्द्रियादिक जीव-तन,
टुकड़े किए या नष्ट उनको, हन्त! बेपरवाह मन।
हो धूल में उनको मिलाया क्लिष्ट पीड़ा या दिए,
मिथ्या बने वे दोष सब, हे देव! हमने जो किए।।5।।

मुक्ति पथ प्रतिकूल गामी, मैं महा मति मंद हो,
इन्द्रिय कषायों के विवश, या दुष्टधि होकर अहो।
चारित्र-शुचिता का विलोपन, जो यह हमसे हुआ,
मिथ्या बने वह हे प्रभो! दुष्कर्म जो हमने किया।।6।।

इस देह या मन, वचन से, या दुष्ट भाव कषाय से,
भव दुःख कारण पाप को, त्यागूँ सदा सदुपाय से।
जैसे भिषग् निज मंत्र से, करता सकल विष का हरण,
आलोचना गर्हा विनिन्दन, त्यों किए हमने वरण।।7।।

होकर विमिति वश जो किया, अतिचार निर्मल नियम का,
अतिक्रम, व्यतिक्रम, भूलवश, विपरीत सेवन धर्म का।
उनके विशोधन के लिए, मैं आज निर्मल भाव से,
हूँ लौटता उन कलुष भावों के महान पड़ाव से।।8।।

जो क्षति करे मन शुद्धि में, अतिक्रम उसे ही है कहा,
स्वीकृत नियम प्रतिकूल मति, व्यतिक्रम कहाता है महा।
वैषयिक सुख मन रमण, माना गया अतिचार है,
तल्लीन होना विषय में, मति भूल है अनाचार है।।9।।

भ्रमवश अगर बोला यहाँ, कुछ भी अगर मैं हूँ वचन,
पद वाक्य मात्रा अर्थ, हीनाक्षर हुए जो भी कथन।
अपराध मेरा कर क्षमा, माँ भारती! ऐसा करें,
कैवल्य से यह हृदय भर, अज्ञान-तम मेरा हरें।।10।।

हो लाभ बोधि, समाधि फिर, परिणाम भी निर्मल रहे,
शिव सोख्य के संग आत्म की, उपलब्धियाँ होती रहे।
हे देवि! तेरी वंदना से, हो अभीप्सित सिद्धियाँ,
चिन्ता-हरण-मणि ध्यान से, मिलती हैं जैसे ऋद्धियाँ।।11।।

जो संस्मरण में आ रहे, मुनिवृन्द के द्वारा यहाँ,
होती है जिनकी प्रार्थना, नर देव सुरपति के यहाँ।
हैं वेद, शास्त्र, पुराण जिन का, नित्य गीत सुना रहे,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर रहे।।12।।

जो ज्ञान दर्शन सुख स्वभावों, से विमल मतिमान है,
जो बाह्य जग के विकृत भावों, से अलग द्युतिमान है।
परमात्मा वह प्राप्य है, पुरुषार्थ और समाधि से,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर बसे।।13।।

संसार के दुःख जाल को, जो नाश करता है सदा,
तीनों भुवन के जीव पर जो, दृष्टि रखता सर्वदा।
अन्तर्हृदय में योगि-जन, करते निरीक्षण हैं जिसे,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर बसे।।14।।

जो मोक्ष पथ का कथन करता, भाग्य-धाता है बड़ा,
जो जन्म एवं मरण से, है सर्वथा बाहर खड़ा।
जो अतनु, तीनों लोक दृष्टा, दूर नित्य कलंक से,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर बसे।।15।।

संसार के सब जीव जिसके, हैं नियन्त्रण में चले,
रागादि सारे दोष वे, जिससे सदा रहते टले।
इन्द्रिय रहित वह ज्ञानमय है, दूर सर्व अपाय से,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर रहे।।16।।

जो व्याप्त सारे विश्व में, हित भाव से भरपूर है,
जो सिद्ध और विबुद्ध है, जो कर्म-रज से दूर है।
है नष्ट होती विकृति सारी, नित्य जिसके ध्यान से,
वह देव का भी देव मेरे, हृदय में आकर बसे।।17।।

जो कर्म रूप कलंक दोषों से बसा अति दूर है,
ज्यों तम पटल से अलग रहता, सर्वथा रवि नूर है।
जो है निरंजन नित्य एक, अनेक का आधार है,
उस आप्त प्रभु की शरण मुझको, सर्वथा स्वीकार है।।18।।

जिस वक्त इस संसार में, रहती नहीं भास्कर प्रभा,
करती प्रकाशित सकल जग, उस वक्त भी उसकी विभा
जो आत्म में संलीन एवं तेज बोधाधार है,
उस आप्त प्रभु की शरण मुझको, सर्वथा स्वीकार है।।19।।

जो ज्ञान पूर्वक देखने पर, दिखता आधार है,
पर है पृथक् संसार से, उससे पृथक संसार है।
जो है अनादि अनन्त शिव, शुचि शुद्ध शान्ताकार है,
उस आप्त प्रभु की शरण मुझको, सर्वथा स्वीकार है।।20।।

जो कर दिया है नष्ट मूर्च्छा, मान मन्मथ शोक को,
भय नींद चिन्ता दु:ख से, बाहर सदा रहता है जो।
ज्यों भस्म करता यह दावानल, सघन तरु-कान्तार है,
उस आप्त प्रभु की शरण मुझको, सर्वथा स्वीकार है।।21।।

तृण मैदिनी पत्थर-शिला, काष्ठादि के आसन नहीं,
समभाव साधन हेतु ये, आधार हो सकते कहीं?
जो शत्रु अक्ष कषाय को, जीता सबल बल धार है,
बुध-जन सुनिर्मल आत्म को ही, मानता आधार है।।22।।

न शांति साधन के लिए, आसन कभी आधार है,
न संघ मेल मिलाप एवं, लोक पूजा सार है।
इस हेतु तू हे जीव! तज सब वासना संसार की,
दिन रात आत्मालीन बन, यह राह है उपकार की।।23।।

ये बाह्य भौतिक तत्व सारे, है नहीं मेरे लिए,
मैं भी न अपना हो सकूँगा, उन सभी पर के लिए।
यूँ छोड़ कर सब बाह्य को, मन में बखूबी ठान कर,
तू स्वस्थ हो जा मोक्ष हित हे भद्र! जीवन दान कर।।24।।

निज आत्मा में आत्मा को, देखकर आगे चलो,
फिर-ज्ञान दर्शन शुद्धता से, हृदय को उज्ज्वल करो।
जो तपी अपने चित्त को, करता अटल एकान्त है,
चाहे जहाँ हो वास उसका, हृदय निर्मल शांत है।।25।।

है आत्मा शाश्वत मेरी, और एक ही है सर्वदा,
कैवल्य भावों से भरा, निर्मल स्वभावी है सदा।
ये बाह्य सारे तत्व जग के, आत्म छवि से दूर हैं,
अपने नहीं, ये कर्मभव, जो नाश से भरपूर हैं।।26।।

जिसका न तन के साथ है, अपनत्व इस संसार में,
उसका भला! हो संग क्या, फिर पुत्र मित्र सुदार में।
प्रिय देह से यदि चर्म को, हम अलग कर देवें यहाँ,
तो रोम-कूप शरीर में, यह बोल ठहरेगा कहाँ।।27।।

संसार रूप अरण्य में, दु:ख के अनेक प्रकार हैं,
जो भोगती यह आत्मा, संयोग के आधार हैं।
अतएव काया वचन मन से, तज सदा संयोग को,
मन में जगी है कामना, यदि प्राप्त करना मोक्ष को।।28।।

सारे विकल्पों को हटा, निज आत्मा को पहचान तू,
संसार-वन में भ्रमण का, कारण इन्हीं को मान तू।
जड़ भिन्न तेरी आत्मा, ऐसा हृदय में जान तू,
बस लीन हो परमात्म में, बनजा महान्-महान् तू।।29।।

हमने किए जो कर्म पहले, जड़ प्रकृति के संग हैं,
ये शुभ-अशुभ फल मिल रहे, हम तो उन्हीं के अंग हैं।
पर का दिया यदि लाभ हो, गर बात यह स्वीकार हो,
तब तो स्वयं कृत कर्म सारे, जगत के बेकार हों।।30।।

निज कर्म का फल प्राप्त करते, जीव सब संसार के,
कोई नहीं दाता यहाँ, उपकार या अपकार के।
इस तरह सब सोच मन को, जो बनाता है अटल,
पर-दान को भ्रम जान अपनी, बुद्धि को करता विमल।।31।।

जो अमितगति का वन्द्य है, विभु रूप वह व्यापक महा,
वह हृद्य है अनवद्य है, है भिन्न इस जरा से अहा।
जो ध्यान करते हैं निरन्तर, लाभ वे करते उन्हें,
वे प्राप्त करते मोक्षश्री, कुछ भी न फिर दुर्लभ जिन्हें।।32।।

-----●-----

2. नमिराज ऋषि के उत्तर

(तर्ज - जय अरिहंताणं प्रभु.....)

जय नमिराज ऋषि, जय 'कंकण' बुद्ध ऋषि!
अमर तुम्हारे उत्तर, जैसे सूर्य शशि, जय-जय नमिराज ऋषि ।ध्रुव।
जाति स्मरण हुआ जब, राज्य ऋद्धि नारी,
सब छिटका कर तत्क्षण, दीक्षा उर धारी ।।1।। जय जय नमि...

शक्र इन्द्र तब पूछे, विप्र रूप निज कर के ।
दृढ़ वैरागी नमिऋषि, देते यों उत्तर ।।2।। जय जय नमि....

'दीक्षा' नहीं दुःखकारी, 'स्वारथ' दुःखकारी ।
स्वारथ कारण रोती, यह मिथिला सारी ।।3।। जय जय नमि...

ममता बन्धन तोड़ा, वह सुख से जीता ।
जग के दुःख संकट से, वह न दुःखी होता ।।4।। जय जय नमि...

निजपुरी मुक्ति पाने, हेतु युद्ध करना ।
नश्वर जड़ नगरी की, क्या रक्षा करना? ।।5।। जय जय नमि...

आत्मा का घर ऊपर, मुझे वहाँ जाना ।
जो नास्तिक है उसने, यहाँ पर घर माना ।।6।। जय जय नमि...

राजनीति है दूषित, कर्म बहुत बंधते ।
सच्चे दण्डित होते, झूठे बच जाते ।।7।। जय जय नमि...

बाह्य युद्ध का कर्त्ता, झूठा सुख पाता ।
आत्म युद्ध कर्त्ता ही, सच्चा सुख पाता ।।8।। जय जय नमि...

लाख-लाख प्रति मास भी, हो कोई गो दाता ।
उससे भी मुनि श्रेष्ठ हैं, अभय-दान दाता ।।9।। जय जय नमि...

नवकार-सी जिनमत की, है जैसे पूनम ।
मासखमण परमत का, नहीं अमावस सम ।।10।। जय जय नमि...

मेरु समान असंख्य, स्वर्ण सिद्धि पावे ।
पर नभ सम तृष्णा का, अन्त नहीं आवे ।।11।। जय जय नमि...

'नारी' कांटा विष है, और महा-नागिन ।
चाह मात्र भी उसकी महा दुर्गति कारण ।।12।। जय जय नमि...

ऐसे उत्तर सुनकर, 'शक्र' प्रसन्न हुए ।
सच्चा रूप प्रकट कर, नत-मस्तक हुए ।।13।। जय जय नमि...

फिर निज मुख से उनकी, करी बहुत कीर्ति ।
धन वैराग्य आपका, पाओगे सिद्धि ।।14।। जय जय नमि...

उत्तम करणी करके, उत्तम गति पाए ।
''पारस'' तू भी यों बन, नीरज हो जाए ।।15।। जय जय नमि...
-श्री उत्तराध्ययन-सूत्र अध्ययन नव के आधार पर।

-----●-----

3. निर्वाण का मार्ग

(तर्ज - कितना बदल गया इन्सान)

सम्यग् ज्ञानी, सम्यग् दर्शी, सम्यग् संयमवान,
उसी को मिलता है निर्वाण ।।टेर।।
शास्त्र शास्त्र में, स्थान स्थान पर बोल गये भगवान,
उसी को मिलता है निर्वाण।।

जीव तत्त्व हूँ, जड़ से निराला, पुण्य शुभ्र है पाप है काला ।
संवर बांध है आश्रव नाला, बंध बंध निर्जरा उजाला ।।
मोक्ष मुक्ति है यों जो हो इन, नव तत्वों का जान ।।1।। उसी को...

देव वही जो अरिहंत हो, गुरू वही जो निरग्रन्थ हो।
धर्म वही जो दयापूर्ण हो, शास्त्र वही जो जिनभाषित हो।
जिस प्राणी की नस नस में यों, अचल भरी श्रद्धान ।।2।। उसी को...

पंच महाव्रत को स्वीकारे, या अणुव्रत ही अंगीकारे।
जैसी शक्ति वैसा धारे, पर प्रमाद को दूर निवारे।।
सिद्ध साक्षी से निरतिचार जो, पाले प्रत्याख्यान ।।3।। उसी को...

केवल कहते ''पारस'' सुन रे, सच्ची सीख हृदय में धर रे।
ज्ञाता दृष्टा व्रतधर बन रे, जिससे तेरा नर भव सुधरे ।।
पूर्व पुण्य से तुझे मिला यह, मानव जन्म महान।।4।। उसी को...

-----●-----

सामान्य ज्ञान विभाग

1. अरिहंत (तीर्थंकर) के चौंतीस अतिशय

सर्वसाधारण में जो विशेषता नहीं पाई जाती, उसे अतिशय कहते है। यह अतिशय विशिष्ट शुभ नाम तथा उच्च गोत्र के उदय से होता है।

1. भगवान के रोम, नख, केश बढ़े नहीं, शोभनिक लगे।
2. भगवान के शरीर में औषध रूपी लेप लगे नहीं।
3. रक्त और मांस गौ दूध से भी अधिक उज्ज्वल धवल और मधुर होवे।
4. भगवान के श्वासोच्छ्वास पद्म कमल से भी अधिक सुगन्धित होवे।
5. भगवान आहार और निहार करें तो छद्मस्थ को नजर नहीं आवे।
6. जब भगवान चलते है तो आकाश में गरणार शब्द करता हुआ धर्म चक्र चलता है और जब भगवान ठहरते है तब ठहरता है।
7. आकाश में तीन छत्र घूमे।
8. उत्तम श्वेत चमर ढुले।
9. निर्मल स्फटिकमय सिंहासन चले।
10. हजार लघु पताकाओं से युक्त इन्द्र ध्वजा आगे चले।
11. अनेक शाखाओं और प्रशाखाओं से युक्त पत्र, पुष्प, फल आदि सुगन्ध वाला भगवान से बारह गुना ऊँचा अशोक वृक्ष भगवान पर छाया करे।
12. शरद ऋतु के जाज्वल्यमान सूर्य से भी बारह गुना अधिक तेज वाला अंधकार का नाशक प्रभामण्डल तीर्थंकर प्रभु के पृष्ठ भाग में दिखाई देवे।
13. तीर्थंकर भगवान जहाँ-जहाँ विहार करते है, वहाँ की जमीन गड्डे या टीले आदि से रहित, समतल होती है।
14. बबूल आदि के काँटे उल्टे हो जावे।
15. सभी ऋतुएँ अनुकूल सुहावनी होवें।
16. भगवान के चारों ओर एक-एक योजन तक मंद-मंद शीतल और सुगन्धित वायु चलती है जिससे सब अशुचि वस्तुएँ दूर होवे।
17. भगवान के चारों ओर बारीक-बारीक सुगन्धित अचित जल की वृष्टि एक-एक योजन में होती है जिससे भूमि धूल रहित होवे।

18. भगवान के चारों ओर देवताओं द्वारा विक्रिया से बनाये हुए अचित्त पाँचों रंगों के फूलों का घुटने प्रमाण ढ़ेर लगे।
19. अमनोज्ञ (अच्छे न लगने वाले) शब्द, वर्ण, रस, गंध और स्पर्श का नाश होवे।
20. मनोज्ञ शब्द वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का उद्‌भव होवे।
21. भगवान के चारों और एक-एक योजन में स्थित परिषद् धर्म-उपदेश सुने और वह धर्म-उपदेश सभी को प्रिय लगे।
22. भगवान धर्म-उपदेश अर्द्ध-मागधी भाषा में फरमाए।
23. आर्य देश और अनार्य देश के मनुष्य, द्विपद (पक्षी), चतुष्पद (पशु) और अपद (सर्प आदि) सभी भगवान की भाषा को समझे और सुख की अनुभूति करे।
24. भगवान के दर्शन करते ही और उपदेश सुनते ही जाति वैर-जैसे सिंह और बकरी का, कुत्ता और बिल्ली तथा भवान्तर (पिछले भव जन्य) का वैर शांत होवे।
25. भगवान का प्रभावपूर्ण और अतिशय सौम्य स्वरूप देखते ही अपने-अपने मत का अभिमान रखने वाले अन्य दर्शनवादी अभिमान को त्याग कर नम्र बने।
26. भगवान के पास वादी, वाद करने के लिये आते हैं किन्तु उत्तर देने में असमर्थ हो जाते हैं।
27. भगवान के चारों तरफ पच्चीस-2 योजन तक ईति-भीति अर्थात् टिड्‌डी और मूषकों आदि का उपद्रव नहीं होता।
28. महामारी, हैजा आदि का उपद्रव नहीं होवे।
29. स्वदेश के राजा का और सेना का उपद्रव नहीं होवे।
30. परदेश के राजा का और सेना का उपद्रव नहीं होवे।
31. अतिवृष्टि अर्थात् बहुत अधिक वर्षा नहीं होवे।
32. अनावृष्टि अर्थात् कम वर्षा या वर्षा का अभाव नहीं होवे।
33. दुर्भिक्ष अकाल पड़ता नहीं।
34. जिस देश में पहले ईति- भीति, महामारी, स्व-परचक्र का भय आदि का उपद्रव हो वहाँ भगवान का पदार्पण होते ही तत्काल उपद्रव दूर

हो जाता है।

इन चौंतीस अतिशयों में से चार (2, 3, 4, 5) अतिशय जन्म से होते हैं। 15 (6-20) केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् और शेष 15 देवकृत होते हैं।

-----●-----

3. दान

भारतीय दर्शन में दान का बहुत अधिक महत्त्व है। दान को सर्वोत्तम कार्य कहा गया है। धन की शोभा एवं सार्थकता दान करने में ही है। यह इस लोक और परलोक का सर्वश्रेष्ठ मित्र, सरलता का साथी, लोभ का दुश्मन, माया के बन्धन को तोड़ने वाला एवं विकारों का नाश करने वाला मोक्ष मंजिल का प्रथम सोपान है।

दान का अर्थ- दान 'दा' धातु से बना है जिसका अर्थ है देना। जो दिया जाए वह दान। वापस पाने की इच्छा से दिया गया दान, दान नहीं होता। प्रशंसा, प्रतिष्ठा पाने, आडम्बर बढ़ाने के लिए बदले की भावना से दिया गया दान, दान नहीं व्यापार है। 'हस्तस्य भूषणं दानम्' हाथ का आभूषण दान है।

नीतिकारों ने धन की तीन गति बताई है दान, भोग और नाश अर्थात् जो न दान देता है और न भोगता है, उसके धन का नाश हो जाना अवश्यम्भावी है। धन होने पर भी जो न देता है, न भोगता है तो वह केवल उसकी रखवाली करता है, चौकीदार है। जैसे- मम्मण सेठ। दान के पीछे कोई कामना, स्वार्थ लोभ नहीं होना चाहिए।

दान के प्रकार

(1) **आहार दान**- भोजन का दान सबसे प्रथम दान बताया है। मुनि एवं साधु भगवन्तों को आहार दान धर्म है, इसमें पापकर्म की निर्जरा होती है जैसे- शालिभद्र, सुबाहुकुमार आदि। गरीबों को भी दान देने में धर्म और पुण्य का अर्जन होता है। जैसे- राजा प्रदेशी।

(2) **औषध दान**- औषध दान का महत्त्व शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। औषध दान पाकर जब रोगी निरोगी होता है तो उसे सुख एवं संतोष की अनुभूति होती है। कहा भी है- 'पहला सुख निरोगी काया।'

(3) **ज्ञान दान**- विद्या दान अनुपम दान है। ज्ञान बिना मनुष्य अन्धा होता है। विद्याविहीन मनुष्य की स्थिति पशुवत होती है, जिस प्रकार किसी अन्धे व्यक्ति को आँखें मिल जाए तो वह कितना आनन्दित होता है, अज्ञानी को विद्या का दान मिलने पर वह अतीव प्रसन्न होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ ज्ञान से सिद्ध होते हैं। प्रभु महावीर ने भी पहले 'ज्ञान' और फिर 'आचरण' को महत्व दिया है। ज्ञान से विवेक प्राप्त होता है और विवेक समस्त सफलताओं का प्रथम चरण है।

(4) **अभय दान**- किसी मरते हुए प्राणी को बचाना तथा किसी संकट में पड़े प्राणी का उद्धार करना, भयभीत प्राणियों को निर्भय करना अभयदान है। 'दाणाण सेटठं अभयप्पयाणं' अर्थात् दानों में श्रेष्ठ अभय दान है। भगवान महावीर ने फरमाया है- सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। अत: जीवों पर दया करना परम धर्म है। अभयदान द्वारा कई आत्माओं ने अपने भव भ्रमण का अन्त कर दिया।

सुपात्र दान- सुपात्र दान का सर्वाधिक महत्त्व है। श्रावक के बारह व्रतों में अंतिम व्रत अतिथि संविभाग व्रत है। जैन आगमों में सुपात्र को तीन भागों में विभक्त किया है-

(1) **सम्यक् दृष्टि**- चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरति सम्यक दृष्टि वह है जो वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवली भाषित धर्म पर दृढ़ श्रद्धा रखता है किन्तु चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से व्रत ग्रहण नहीं कर सकता।

(2) **देशविरति श्रावक**- द्वितीय श्रेणी में वे श्रावक आते हैं, जो जीवादि नवतत्त्व एवं पच्चीस क्रिया के जानकार होते हैं तथा चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम कर देशत: अहिंसा, सत्य, अचौर्य आदि बारह व्रतों व श्रावक की ग्यारह प्रतिमा आदि को ग्रहण करते हैं, इनसे भी निर्जरा होती है।

(3) **निर्ग्रन्थ मुनि**- सर्वोत्तम सुपात्र निर्ग्रन्थ मुनि हैं जिन्होंने संसार के सम्पूर्ण ऐश्वर्य और भोग-विलास को ठुकराकर हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि का तीन करण-तीन योग से सर्वथा त्याग कर दिया है। इन्हें प्रमोद भाव से चौदह प्रकार के निर्दोष पदार्थ देने से महान् निर्जरा होती है। असण, पाण, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोरहण और पीठ, फलक, शय्या संस्तारक (आसन), औषध, भेषज (चूर्ण आदि) देते समय

चित्त, वित्त और पात्र की शुद्धता होनी चाहिए। देते समय दाता का मन शुद्ध, निष्काम होना चाहिए। यह चित्त की विशुद्धता है जो वस्तु दी जा रही है, वह प्रासुक एवं शुद्ध होनी चाहिए, यह वित्त की विशुद्धता, लेने वाला ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी रत्नत्रयी का आराधक हो, यह पात्र की विशुद्धता है। निःस्वार्थ भाव से देने वाला, संयम निर्वाहार्थ लेने वाला, दोनों दुर्लभ है। कहा है-

'दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा'। (दशवै-5) संगम ग्वाला बड़ी कठिनाई से खीर प्राप्त कर संयमी मुनि को प्रतिलाभित करने की भावना भाता है। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'। संगम को मासखमण का तप करने वाले घोर तपस्वी मुनि का योग मिलता है। उसकी प्रमोद भावना उमड़ती है। वह बड़ी श्रद्धा से खीर बहराता है। उत्कृष्ट भावना से बहराने के कारण वह महान् ऋद्धिशाली शालिभद्र बनता है।

सिर्फ द्राक्षा (दाखों) का धोया हुआ पानी साधु को बहराकर शंख राजा ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया और भगवान अरिष्टनेमी के रूप में अवतरित हुए। नयसार के भव में दिए गए दान के कारण भगवान महावीर के जीव ने सम्यक्त्व का स्पर्श किया। इस प्रकार सुपात्र दान के द्वारा संसार को सीमित करने वाले अनेक दृष्टान्त जैनागमों के स्वर्णिम पृष्ठों पर आज भी अंकित हैं।

सुपात्र को ही दान देना एवं अन्य किसी दुःखी प्राणी को दान नहीं देना यह धारणा नितान्त गलत है। संसार में जितने भी प्राणी हैं, जो दुःखी हैं, संतप्त हैं, उनको देखकर उनके प्रति अनुकम्पा भाव लाना एवं उनका दुःख दूर करने का प्रयास करना भी दान की श्रेणी में आता है। अनुकम्पा दान सम्यक्त्व का लक्षण है। राजा प्रदेशी ने अपनी राज्यश्री को चार भागों में विभक्त कर एक भाग में विशाल दान शाला खोली। ऐतिहासिक राजा कुमारपाल ने दीनहीन प्राणियों के लिये भोजन, वस्त्र आदि की विशेष व्यवस्था की थी और इन्होंने महान् पुण्य का अर्जन किया।

दान के साथ भावना का सम्बन्ध- दान विवेकपूर्वक एवं शुभ भावों से दिया जाना चाहिए ताकि लेने वाले के सम्मान को ठेस नहीं पहुँचे और देने वाले के मन में अभिमान उत्पन्न न होवे। दान देते समय भावना प्रशस्त रहनी चाहिए। जिसकी जैसी भावना होती है, वैसा ही फल प्राप्त होता है। महासती चन्दनबाला ने प्रभु महावीर को उड़द के बाकले भी जिस श्रद्धा

भाव से बहराये, वह हृदय को गद्गद् कर देता है। उसके हर्ष का पार नहीं रहता। नयनों में आनन्दाश्रु भर आते हैं, शरीर पुलकित हो जाता है। नागश्री ब्राह्मणी द्वारा अशुभ भाव से दिया गया कटुक शाक का आहार संसार परिभ्रमण का कारण बनता है। महाराजा श्रेणिक की आज्ञा से कपिला दासी द्वारा दिया गया भाव-विहीन दान अर्थविहीन रहा। अशुभ, अशुद्ध भावना बन्ध का कारण है एवं संसार में भटकाने वाली है। शुभ भावना मुक्ति का सोपान है। दान में वस्तु का नहीं बल्कि भावों का महत्त्व है। कहा भी है 'भावना भवनाशिनी' अर्थात् भावना भव-भवान्तर का नाश करने वाली होती है। आत्मा की सद्गति के लिए भाव-शुद्धि अनिवार्य है।

दान का महत्व- जैन धर्म का आधार दान ही है, श्रमण जीवन[1] एवं श्रावक जीवन का मूल दान है। दान दुर्गति का नाश करता है। मनुष्य के हृदय को विशाल एवं विराट बनाता है। दान मानव जीवन में प्रेम दया-करूणा का स्रोत प्रवाहित करता है। दान के द्वारा ममत्व बुद्धि (मेरे तेरे की भावना) एवं संग्रह वृत्ति का नाश होता है। दान के द्वारा समता, सरसता, सहृदयता, अनुकम्पा, करूणा, मैत्री जैसी कई धाराएँ एक साथ प्रवाहित होती हैं। हमारे आदर्श 24 तीर्थंकर दीक्षा के पूर्व 1 वर्ष तक लगातार दान देते हैं। मोक्ष के चार उपाय दान, शील, तप, भावना हैं। इनमें प्रथम स्थान दान को ही प्रदान किया गया है।

-----●-----

1. छः काया के जीवों को अभयदान साधुत्व का प्रथम चरण है।

3. सुभाषित

दान- चीड़ी चोंच भर ले गई, घटियो न नदियन् नीर,
दान दिये धन ना घटे, कह गये दास कबीर।

दान- फूल खिलते हैं बहुत मगर सुगंध देता है कोई-कोई,
पैसा कमाते हैं बहुत, मगर दान करता है कोई-कोई।

तप- तप जीवन की शान है, करने वाला जग में महान है,
जिनवाणी का कहना भी है, तपस्वी के चरणों में झुकता जहान है।

तप- सुनने का सार है, तप से भवसागर पार है।
जिह्वा से नहीं गाई जा सकती, क्योंकि तप की महिमा अपरंपार है।

भाव- भाव ही भव और भाव ही भगवान है,
धन और यौवन तो सिर्फ मेहमान है।

भाव- भावे भावना भाईये,
भावे दीजे दान,
भावे धर्म आराधिये,
भावे केवलज्ञान। पावे पद निर्वाण।

शील- 1. शील रतन मोटो रतन, सब रतनां की खान।
तीन लोक की संपदा, रही शील में आन।

2. शील रतन के पारखी, मीठा बोले बैन ।
सब जग से ऊँचा रहे, जो नीचा राखे नैन।।

3. काम भोग प्यारा लगे, फल किम्पाक समान।
मीठी खाज खुजावतां, पीछे दु:ख की खान।।

-----●-----

णमो सिद्धाणं

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड बीकानेर

जैन संस्कार पाठ्यक्रम परीक्षा 2011

(प्रश्न-उत्तर पत्र भाग-8) पूर्णांक : 100

सूत्र विभाग-35

प्रश्न 1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।** 5

1) विपाक सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में .... अध्ययन है।
2) पुष्पकरण्डक उद्यान...नगर में था।
3) सुबाहुकुमार की माता का नाम.....................................था।
4) सुमुख गाथापति................................नामक नगर में रहते थे।
5) सुबाहुकुमार ने भगवान..................से दीक्षा अंगीकार की थी।

प्रश्न 2. **निम्न शास्त्र पाठ को पूर्ण कीजिए।** 30

1) एवं खलु जम्बू! ....
.... होत्था, दिव्वे।।।
2) तेणं कालेणं ....।
.... भावेमाणे विहरइ।।
3) तए णं से सुमुहे ....।
.... उप्पिं पासाए विहरइ।।
4) तए णं से सुबाहुकुमारे ....।
.... पडिजागरमाणे विहरइ।।
4) तए णं समणे भगवं ....।
.... अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।।

तत्त्व विभाग-25

प्रश्न 1. **सही (✓) व गलत (✗) बताइये।** 5

1) वीर्याचार के बारह भेद हैं। ( )
2) श्रावक की 11 प्रतिमाओं में छठी ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। ( )
3) अनशन, ऊनोदरी करना चरणसत्तरी है। ( )
4) स्थिति पूर्ण करके कर्म का फल देना उदय कहलाता है। ( )

5) हेतु सतावन (57) होते हैं। ( )

प्रश्न 2. **निम्न प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में लिखिए।** 15

1) श्रावक की दया कितने विस्वा होती है।

उत्तर ....

2) जागरणा के प्रकारों के नाम लिखो।

उत्तर ....

3) क्रिया धर्म के दो भेदों के नाम लिखो।

उत्तर ....

4) स्वभाव धर्म के दो भेदों के नाम लिखो।

उत्तर ....

5) श्रावक की दसवीं प्रतिमा का नाम लिखो।

उत्तर ....

6) ग्यारहवें गुणस्थान का पूरा नाम लिखो।

उत्तर ....

7) सत्ता को परिभाषित करो।

उत्तर ....

8) क्षायिक भाव को परिभाषित करो।

उत्तर ....

9) चारित्र कौनसे गुणस्थान तक नहीं होता।

उत्तर ....

10) छः लेश्याएं कौनसे गुणस्थान तक पाई जाती है।

उत्तर ....

प्रश्न 3. **गुणस्थानों पर 29 द्वारों के क्रम से नाम लिखो।** 5

(1) .... (2) .... (3) ....

(4) .... (5) .... (6) ....

(7) .... (8) .... (9) ....

(10) .... (11) .... (12) ....

(13) .... (14) .... (15) ....

(16).................. (17) .... (18)..................
(19).................. (20) .... (21)..................
(22).................. (23) .... (24)..................
(25).................. (26) .... (27)..................
(28).................. (29) ....

कथा विभाग-10

प्रश्न 2. **किसने किससे कहा?** 10

1) ''एक कंबल हमें चाहिए, जो भी मूल्य हो वह लेकर कंबल दे दो''

उत्तर ....

2) 'आज तुम तुम्हारी माता से मिले आहार से पारणा करोगे।''

उत्तर ....

3) ''माता! मैं आपका मनोरथ पूर्ण हो, ऐसा प्रयत्न एवं उपाय करूंगा।''

उत्तर ....

4) ''प्राणेश! हो सकता है आपका अनुमान ठीक हो, फिर भी युद्ध में जाते समय सावधान रहिए।''

उत्तर ....

5) ''गुरुदेव! यह उल्टी गंगा कैसे बह गई।''

उत्तर ....

काव्य विभाग-15

प्रश्न 1. **निम्न काव्यांशों को पूर्ण करो।** 15

1) मैत्री सकल ....।
.... प्रति रहे।।

2) जो क्षति करे ....।
....अनाचार है।।

3) निज कर्म..।
....करता विमल।।

4) हे आत्मा..।
....भरपूर है।।

5) देव वही जो..।
....मिलता है निर्वाण।।

सामान्य ज्ञान विभाग-15

प्रश्न 1. **श्री अरिहन्त (तीर्थंकर) के अतिशय संबंधी निम्न रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।** 7

1) भगवान के शरीर में .... लेप लगे नहीं।
2) निर्मल .... सिंहासन चले।
3) .... आदि के काँटे उलटे हो जाये।
4) भगवान धर्म उपदेश .... भाषा में फरमावे।
5) .... हैजा आदि का उपद्रव होवे नहीं।
6) .... शब्द, वर्ण, रस, गंध और स्पर्श का नाश होवे।
7) दुर्भिक्ष .... पड़ता नहीं।

प्रश्न 2. सुपात्र दान के तीन भागों में नाम लिखो। 2

उत्तर ....

प्रश्न 3. 'दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा।'
किस सूत्र से लिया गया है? 2

उत्तर ....

प्रश्न 4. निम्न गाथाओं को पूर्ण करो। 4

1) भावे ....।
.... केवलज्ञान।।

2) काम भोग ....।
....की खान।।